ॐ

दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि

स्वर्गीया विदुषी चम्पावती जैन

लेखक:—

श्रीयुत् बाबू कामताप्रसाद जैन,

एम० आर० ए० एस०,

ऑन० सं० 'वीर' अलीगंज (एटा)

प्रथमबार २००० | सन् १९३२ ई० | मूल्य एक रुपया

प्रकाशक:—
पं० मंगलसेन जैन मंत्री,
चम्पावती जैन पुस्तकमाला प्रकाशन विभाग
श्री भा० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ,
अम्बाला छावनी

मुद्रक:—
शान्तिचन्द्र जैन,
"चैतन्य" प्रिन्टिंग प्रेस, बिजनौर

विषय-सूची ।

नं०	विषय	पृष्ठ

प्रकाशकीय वक्तव्य।

जिस समय मांडवी जिला सूरत में सरकार ने मुनियों के स्वतन्त्र विहार में अड़चन डाली थी उस समय दिग० जैन शास्त्रार्थसंघ की तरफ से दिगम्बर मुनियों के दिगम्बरत्व के समर्थन के साथ ही साथ उसके स्वरूप को जनसाधारण तक पहुंचाने के हेतु 'दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि' नामकी पुस्तक के निर्माण की सूचना दी गई थी। बड़े हर्ष की बात है कि मुझे अब इस बात का सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि मैं उक्त पुस्तक को आपके कर कमलों में उपस्थित कर रहा हूं। पुस्तक के सुयोग्य लेखक, समाज के अद्वितीय ऐतिहासिक विद्वान, बा० कामताप्रसाद जी के ही असीम परिश्रम का फल है कि जो इस थोड़े से समय में यह ग्रन्थरत्न आपकी सेवा में उपस्थित किया जा सका है। लेखक महोदय के इस सत्प्रयत्न का संघ अत्यन्त आभारी है। वहां मैं अम्बाला के उन महानुभावों को जिन्होंने कि आर्थिक सहायता देकर पुस्तक के प्रकाशन में हमारी सहायता की है धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। सहायताकी रकम दानी महानुभावोंकी शुभनामावलिके साथ ही साथ टाइटिल के दूसरी तरफ प्रकाशित कर दी गई है।

उन पुस्तकों में से जिनके प्रमाणों का उल्लेख कि प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है कुछ तो मूल्य से खरीदी गई हैं तथा बाकी की भारत के प्रसिद्ध २ पुस्तकालयों से मंगाई गई थीं,

यही कारण है कि प्रस्तुत पुस्तक में इसही प्रकार की अन्य पुस्तकों से कहीं अधिक व्यय हुआ है।

जिस प्रस्ताव में संघ ने इस पुस्तक के निर्माण का निश्चय किया था उसही में यह भी निश्चित किया था कि पुस्तक को एक अच्छी संख्या में बिना मूल्य जैन विद्वानों और योग्य व्यक्तियों को भेंट किया जाय और इस पर उनकी सम्मति प्राप्त की जाय।

इनही कारणों की वजह से सहायता मिलने पर भी पुस्तक का मूल्य एक रुपया रक्खा गया है।

यद्यपि आवश्यकीय तो यह था कि यह पुस्तक हर एक भाषा में छपती, ताकि दिगम्बरत्व की मान्यता और उसके आदर्श को विभिन्नभाषाभाषियों तक पहुँचाया जा सकता, किन्तु दुःख है कि हमारे पास इतनी शक्ति नहीं थी ताकि हम ऐसा कर सकते। यदि हमारे विचारशील पाठकोंने हमारे इस कार्यको अपनाया और इस कार्यमें हमारा हाथ बटाया तो हमें पूर्ण आशा है कि हम शीघ्र ही इस पुस्तक को, संसार की नहीं तो कम से कम भारत की प्रचलित भाषाओं में तो अवश्य, पाठकों के कर कमलों में अर्पण कर सकेंगे।

विनीत—

मंगलसैन जैन मन्त्री,
चम्पावती पुस्तकमाला-प्रकाशनविभाग-
श्री भारतवर्षीय दि० जैन शास्त्रार्थ संघ।

भूमिका।

मंगलमय, मंगलकरण, वीतराग विज्ञान ।
नमो ताहि जातेभये अरहन्तादि महान ॥

साधुओं के लिये दिगम्बरत्व आवश्यकीय है या अनिवार्य ? यदि आवश्यकीय है तब तो वह त्यागा भी जा सकता है। ऐसी बहुतसी वस्तुयें हैं चाहे वे आंतरिक न भी हों और आत्मोन्नति से ही सम्बन्ध रखने वाली क्यों न हों, किन्तु यदि उनका अस्तित्व इस ही कोटि में है तब तो उनका परिहार भी किया जासकता है; क्योंकि ऐसा करने से मार्ग में कोई रुकावट नहीं आती। किसी एक उपयोगी शास्त्र को ही लेलीजिये, उसका अस्तित्व साधुओंके लिये अवश्य आवश्यकीय है, किंतु उसका यह भाव कदापि नहीं कि उसके अभाव से उनके साधुत्व में भी बाधा आती है। साधुओं के लिये दिगम्बरत्व यदि अनिवार्य है और उसके अभाव से उनके साधुत्व में ही बाधा उपस्थित होती है तो वह कौनसी युक्ति है जो कि मनुष्य के मस्तिष्क को इस परिणाम तक लेजाती है। यही एक बात है जिसके हल करने की आवश्यकता है और जिसके हल होजाने से उक्त विषय की समस्त अड़चनें दूर हो जाती हैं।

साधु शब्द का अर्थ साध्नोतीति साधुः अर्थात् जो सिद्ध करता है वह साधु है।

साधुशब्द जिस धातु से (Verb) बना है वह साध-

मैक (Intransitive) है, अतः उसके कर्त्ता को क्रिया के आश्रय के हेतु किसी अन्य पदार्थ का अस्तित्व आवश्यकीय नहीं। ऐसी अवस्था में स्पष्ट है कि यह आत्मा जो कि साधु शब्द का वाच्य है या जो उस अवस्था को पहुँच चुका है जिस किसी को सिद्ध करता है वह ऐसी वस्तु है जिसका अस्तित्व कि उससे भिन्न नहीं दूसरे शब्दों में इसको कहना चाहें तो यों भी कह सकते हैं कि साधु के सिद्ध करने योग्य वस्तु उस के गुण ही हैं। इसही प्रकार मुनि आदिक शब्द भी इसही बात का समर्थन करते हैं।

ऐसी अवस्था में जब कि यह स्पष्ट होजाता है कि साधु उसे कहते हैं कि जो अपने गुणों को सिद्ध करता हो, वे गुण जो साधु के हैं या जिनको कि साधु सिद्ध करता है कौन से हैं इस प्रश्न का होना एक स्वाभाविक बात है।

साधु जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है कोई एक भिन्न पदार्थ नहीं, किंतु आत्माकी एक अवस्था विशेष का नाम ही साधु है; अतः साधु के गुणों से तात्पर्य यहां आत्मिक गुणों से ही है। यदि स्थूल दृष्टि से कहा जाय तो यों कह सकते हैं कि गुण उसे कहते हैं जो कि हमेशा और हर हिस्से में रहें— तथा जिसके अस्तित्व के हेतु किसी अन्य पदार्थ की आवश्यकता न हो; ऐसी बातें जिनका अस्तित्व कि आत्मा में उपर्युक्त प्रकार से मौजूद है ज्ञान दर्शन सुख और शक्ति आदिक हैं। आत्मा की ऐसी कोई अवस्था या प्रदेश नहीं जहां कि ज्ञान

गुण का अस्तित्व न हो। जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक हिस्से में जब तक कि आत्मा का अस्तित्व उस में रहता है ज्ञान का कार्य अनुभव में आता है, उस ही तरह उसकी हर अवस्था में चाहे वह दिनसे सम्बन्ध रखने वाली हो या रात से, सोती हुई अवस्था की हो या जागती हुई अवस्था की, जाग्रत अवस्था में तो ज्ञान के अनुभव से किसी भी शंका का स्थान ही नहीं। अब रह जाती है निद्रितावस्था, इसके संबन्ध में बात यह है कि निद्रितावस्था में ज्ञान का अभाव नहीं होता, किन्तु शरीर पर निद्रा का इस प्रकार का प्रभाव पड़ जाता है कि जिससे वह जाग्रत अवस्था की भांति अनुभव में नहीं आता। निद्रा की अवस्था ठीक इसही भांति की होती है जैसी कि क्लोरोफार्म के बेहोश को। जिस प्रकार क्लोरोफार्म शरीर के अवयवों पर इस प्रकार का प्रभाव करता है कि वे ज्ञान के उपयोग रूप होने में सहायक नहीं हो सकते, उसही प्रकार निद्रा भी। यदि ऐसा होता कि निद्रितावस्था में ज्ञान न रहता तो निद्रा में न्यूनाधिकता का सद्भाव ही कैसे मालूम होता? शास्त्रकारों ने ऐसे ज्ञान को लब्धिरूप कहा है तथा उसको जो कि स्पष्टरूप से अनुभव में आता है उपयोगरूप। जिस प्रकार कि ज्ञान का अस्तित्व आत्मामें अबाधित है उसही प्रकार उसका कारणों की अपेक्षा का न रखना भी। यदि इसको कारणों की आवश्यकता होती तो उसका सर्वथा निराबाधित अस्तित्व आत्मा में न होता, किन्तु जब २ ही

होता, जब २ कि उसके कारण मिलते । किसी वस्तु का अस्तित्व और उसमें न्यूनाधिकता में आ जाते हैं । अतः ज्ञानमें न्यूनाधिकता का होना उसके निर्बाधित अस्तित्व पर कुछ भी प्रभाव नहीं रख सकता । यह ज्ञान जिसका कि आत्मा में निर्बाध रूप से अस्तित्व सर्वदा से रहता है एक पूर्ण रूप है । इसका पूर्ण विशिष्टस्वरूप ऐसा है कि जिसमें कि जगत के समस्त पदार्थ प्रतिभासित होते हैं । यही एक गुण है जिसके पूर्णोद्भव होने पर आत्मा सर्वज्ञ होता है ।

किसी गुण का किसी रूप होना और उसका वर्तमान में स्वरूप में दृष्टिगोचर न होना, यह कोई विरुद्ध बात नहीं । यह संभव है कि उसके उस रूप में कोई बाधक हो और उसका उस रूप में अनुभव न हो सकता हो । एक नहीं ऐसी अनेक वस्तुयें हैं जो कि हमारे उपर्युक्त भाव का समर्थन करती हैं । खानि पाषाण को ही ले लीजिये उसमें स्वर्णरूप विद्यमान है, किन्तु उसका प्रतिभास अन्य शुद्ध स्वर्ण की भांति नहीं होता, यही अवस्था ज्ञान की है । ज्ञान के सर्वज्ञत्व सिद्ध करने वाली अनेक युक्तियों में से एक अति सरल का समावेश हम यहां किये देते हैं । रेखा गणितका यह एक अति सरल सिद्धान्त है कि तीन लाइनें हैं तथा पहिली लाइन दूसरी के और दूसरी तीसरी के बराबर है तो उससे यह स्पष्ट है कि पहिली और तीसरी लाइनें बराबर हैं । ठीक इस ही प्रकार जगत में कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो कि ज्ञेय न हो

वाले जो किसी से भी जाने जाने योग्य न हों। यहां के पदार्थों को हम जानते हैं या जान सकते हैं तो यूरोप के पदार्थों को वहां के। इसही प्रकार अन्य स्थानों के पदार्थों को अन्य स्थानों के। यही बात भूत और भविष्यत पदार्थों के सम्बन्ध में है। यदि वर्तमान के पदार्थों को वर्तमान के जीव जानते हैं तो भूत और भविष्यत के पदार्थों को भूत और भविष्यत के जीव। ये जीव जिनके ज्ञेय में जगत के सब पदार्थ हैं सत्य हैं। ऐसी अवस्था में एक जीव जगत के सब पदार्थों का ज्ञान रखता है, और इस ही का नाम सर्व पदार्थों के ज्ञान की शक्ति का रखना है।

जिस प्रकार कि आत्मा का एक ज्ञान गुण है और वह पूर्णज्ञानमय है, उसही प्रकार सुख भी—सुख के अर्थमें निराकुलता से है। निराकुलता एक आत्मीक गुण है, इसका बाहिरी वस्तुओं से कोई सम्बन्ध नहीं। यह सम्भव है कि हमारे अज्ञान के कारण बाहिरी पदार्थों का असर हम पर पड़ता हो और उसके कारण हम आकुलता सहकर कष्ट भोगें तथा उन विषय के मिलने से हमारी वह आकुलता दूर हो जाय। किन्तु इसका यह मतलब कदापि नहीं हो सकता कि वह निराकुलता विषयों से आई है। आकुलता और निराकुलता, ये तो दो आत्मिक अवस्थायें हैं। यह दूसरी बात है कि पर पदार्थ की मौजूदगी और ग़ैर मौजूदगी इनमें निमित्त होती है। किन्तु वास्तव में हैं तो वे आत्मिक

अवस्थायें हो । जहां मन की अवस्था होती है वहां निराकुलता के हेतु परपदार्थ का अस्तित्व आवश्यकीय भी नहीं है तथा जब कि निराकुलता ही सुख है तो वह तो स्वयं-स्पष्ट होजाता है कि यह आत्मिक निजी सम्पत्ति है। इसका शुद्ध रूप भी पूर्णतामय है। क्योंकि तात्विक आत्मा की निजी सम्पत्ति पूर्णस्वरूप सिद्ध होजाती है तब अनन्त शक्तिके समर्थन के हेतु किसी अन्य युक्ति की आवश्यकता ही नहीं रहती। सर्वज्ञ केवलज्ञान का अस्तित्व ही अनन्तशक्ति के सद्भाव को सिद्ध करता है यदि ऐसा न होता तो पूर्णज्ञान का सद्भाव भी असम्भव था। ज्ञान तो क्या कोई भी ऐसी चीज नहीं जिसका अस्तित्व तद्गुणक पदार्थ में हो।

जिस प्रकार हमको उपर्युक्त आत्मिक गुणोंके समर्थन में प्रमाण मिलते हैं, उसही प्रकार इस बातका अनुभव भी कि ये गुण हमारी आत्मा में पूर्णरूप में नहीं। साथ ही कुछ ऐसी बातें हैं जो कि आत्मिक गुण नहीं जैसे राग द्वेष और मोहादिक। इनके आत्मिक गुण न होने में यही एक दलील पर्याप्त है कि वे सर्वदा स्थायी और निरुपद्रवक नहीं। ऐसी अवस्थामें पाने एक तरफ़ तो ज्ञानादिक के आत्मिक गुण और उनके पूर्णरूप में प्रमाणों का मिलना और दूसरी तरफ़ उनके पूर्णरूप का अनुभव न होना तथा आत्मा में रागादिक के मिलने से एक कठिन प्रश्न उपस्थित होजाता है कि ऐसा क्यों?

जिस प्रकार कि राग, द्वेष, मोह, और आकुलतादिक

स्वाभाविक गुण नहीं, क्योंकि उनका अस्तित्व आत्मा में हमेशा नहीं रहता, उसही प्रकार वे अस्वाभाविक भी नहीं; क्योंकि उनका आत्मामें ही अनुभव होता है; इसही प्रकार इनमें न्यूनाधिकता भी प्रतीत होती है। इससे यही परिणाम निकलता है कि आत्मातिरिक्त कोई अन्य ऐसी वस्तु है जिसके प्रभाव से कि स्वाभाविक गुणों की ही यह अवस्था होजाती है और उसकी अपेक्षा से ही वैभाविकता में कमीवेशी रहती है। इसही—आत्मातिरिक्त वस्तु को जैन दार्शनिकों ने कर्मसंज्ञा दी है।

पुद्गल (matter) में अनेक शक्तियां हैं। उन ही शक्तियोंमें से एक आत्मिक गुणोंको विकारी करने की भी है। ग्रामोफोन बाजा और सिनेमेटोग्राफ का प्रभाव इसके जीते जागते दृष्टान्त हैं। जिस प्रकार कि पुद्गलकी अन्य शक्तियां पुद्गल की हर एक अवस्था में प्रगट नहीं होतीं, उनके प्रकाश के लिये पुद्गल (matter) की खास २ अवस्थाओं की आवश्यकता है, इसी प्रकार इस शक्ति के विकास के लिये भी। वह पुद्गल स्कन्ध जो कि इस शक्ति के विकास योग्य होजाता है, जैन दार्शनिकों ने उसको कार्माणस्कन्ध संज्ञा दी है।

जिस प्रकार आत्मा में वैभाविकता का अस्तित्व कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से सिद्ध करता है, उसही प्रकार कर्मों का अस्तित्व भी उसके कारणों का। वे कारण जो कि पुद्गल के कार्माणस्कन्ध को कर्मरूप परिणत होने में निमित्त होते हैं, आत्मिक ही होने चाहियें; क्योंकि कर्मों का सम्बन्ध और

उनका फल आत्मा में ही होते हैं। आत्मिक होते हुए भी वे आत्मा के शुद्ध स्वरूप नहीं, यदि वे ऐसे होते तो वे नाश के कारण ही क्यों होते ? दूसरे कर्म निमित्त से जिनका संबंध आत्मासे होता है वह उनपर विकारी प्रभाव नहीं कर सकता था। इससे स्पष्ट है कि वे आत्मिक भाव जो कि कर्मोद-स्वभावसे कर्मोदय परिणाम कहे हैं अवश्य विकारी हैं। इसही प्रकार समाधि २ विचार करने से विकारीभाव और कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से अनादि प्रमाणित होता है, यह बात अवश्य है कि अनादि से आत्मा के विकारीभाव और कर्म एक नहीं किन्तु भिन्न २ हैं। किन्तु इसका यह अर्थ तो कदापि नहीं और न हो ही सकता है कि उनका सम्बन्ध आत्मा से अनादि नहीं।

जिस प्रकार फल या प्लेट पर जिसकी कि फोटोग्राफ ली जाती है उसी के अनुसार ही चित्र होता है और अवसर पड़ने पर वह तद्रूप ही प्रगट करता है, उस ही प्रकार आत्मा के विकारीभावों का कार्मणस्कन्ध पर। जिस समय कर्म उदय में आता है वह फोटोग्राफ की प्लेट की तरह तद्रूप ही प्रभाव आत्मा पर करता है।

जिस प्रकार कि आत्मिक विकारी भावों से पुद्गलों का कर्मरूप होना अनिवार्य है, उस ही प्रकार कर्मों के उदय से आत्मा का विकारी होना नहीं। इसमें दो कारण हैं—एक तो यह कि कर्म पुद्गलरूप हैं, अतः उनकी फलशक्ति में कभी भी

की जा सकती है। दूसरी बात यह है कि यदि उस समय आत्मा अप्रसन्न हुई तो उसके प्रभाव को अपने ऊपर न भी होने दे। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि जीव के राग, द्वेष और मोहादिक ही विकारीभाव हैं, जिनके कारण कि जीव अनादिकाल इस चक्कर में पड़ रहा है और जिसके कारण कि उसको अनेक यातनायें भोगनी पड़ती हैं, और यही मुख्य बात है जिसके कारण यह जीव आत्मातिरिक्त पदार्थों में भी राग और द्वेष करता है।

जब तक जीव में इस प्रकार के परिणाम होते रहेंगे तबतक उनका सम्बन्ध भी कर्मों से अवश्य होता रहेगा। अतः उन जीवों को जो कि इस चक्कर से बचना चाहते हैं यह अनिवार्य है कि वे राग और द्वेषादिक का बिलकुल अभाव करें।

जिस प्रकार कि यह बात सत्य है कि बाह्य पदार्थों का कमजोर आत्माओं पर प्रभाव पड़ता है, उसही प्रकार यह भी कि बिना दूसरे पदार्थों के राग और द्वेष के उनसे जीव का सम्बन्ध रहना भी असंभव है। अतः राग और द्वेषादिक का अभाव धीरे २ या एक दम राग और द्वेषादिक के कारण एवं उनके कार्य बाह्य पदार्थों के सम्बन्ध त्याग से हो सकता है। इसही बातको लेकर जबसे मनुष्य गृहस्थ जीवन में प्रवेश करता है इस बात का पूर्ण ध्यान रखता है। ध्यान ही नहीं बल्कि उसके लिए सतत प्रयत्न भी करता है कि वह राग

और द्वेष का सम्बन्ध कम करता जाय और जब उसकी आत्मा प्रबल हो जाती है, वह सांसारिक सब पदार्थ यहां तक कि शरीर भी स्वतन्त्र समझता है, और उनका त्याग कर देता है और आत्म ध्यान में रहता हुआ कर्मों के नाश में लग हो जाता है।

बाह्य-त्याग से आप केवल बाहिरी वस्त्र त्याग से ही नहीं। ऐसे त्याग को तो जैनदर्शन त्याग ही नहीं कहता किन्तु वस्त्रत्याग के साथ ही साथ उसके विचार तो दूर रहे उनकी भावना का भी हृदयसे निकल जाने से है। इसही दृष्टि से तो कहा जाता है कि जैसे तन के साथ वैसे मनका होना भी अनिवार्य है और इसही का नाम दिगम्बरत्व है।

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि यह जीव अनादिकाल से रागादिक भावों से कर्मबन्ध और उसके प्रभावसे रागादिक को करता चला आरहाहै और रागादिक के बिना बाह्य पदार्थों का सम्बन्ध आत्मा से नहीं रहसकता तथा रागादिक से कर्म बन्धका होना अनिवार्य है। अतः उन जीवों को जोकि इस सम्बन्ध को तोड़कर सदैव के लिए शुद्ध स्वरूपस्थ होना चाहते हैं आवश्यकीय ही नहीं अपितु अनिवार्य है कि रागा- दिक को घटाते २ यहां तक घटावें कि सांसारिक सब पदार्थों का त्याग उनसे होजाय, और ज्ञान, ध्यान और तपमें लीन रहते हुए आत्मिक शक्ति को इतना प्रबल करें कि आगाड़ी हृदय में आने वाले कर्मों का प्रभाव ही कम पड़ जाय या पड़े। ऐसा होनेसे

ऐसा कोई ऐतिहासिक आधार (जिसका [illegible] समावेश विद्वान लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में किया है) नहीं जोकि दिगम्बरत्व का समर्थक न हो।

दिगम्बरत्व के समर्थन में प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन से प्राचीन शास्त्रोंके उल्लेखों एवं शिलालेख और विदेशी यात्रियों के यात्राविवरणों में से कुछ शब्दों का संग्रह भी बड़ी ही गंभीर खोज के साथ किया गया है। दिगम्बरत्व वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक सत्य है, अतएव वह सर्वतंत्रसिद्धान्त भी है। इसका स्पष्टीकरण भी हमारे सुयोग्य लेखक ने बड़े महत्व के साथ किया है। हर एक धर्मकी मान्य पुस्तकों से, चाहे वे मुसलमान धर्मकी हों या ईसाई धर्मकी, अथवा वैदिक धर्म की, इस विषय का समर्थन प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। कानून की दृष्टि से भी दिगम्बरत्व अव्यवहार्य नहीं, इस बात के समर्थन के हेतु भी हमारे सुयोग्य लेखक ने किसी बात की कमी नहीं रक्खी। अधिक क्या, पुस्तक हर दृष्टिसे परिपूर्ण है और इसके लिए श्रीयुत बा० कामताप्रसाद जी हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

'बोलो सत्य धर्म निर्ग्रन्थ दिगम्बर'

अम्बाला छावनी
[illegible] फरवरी १९३२ ई०

विनीत—
राजेन्द्रकुमार जैन,
न्यायतीर्थ।

मेरे दो शब्द !

पिछली फरवरी के दिन थे। "जैनमित्र" पढ़ते हुये मैंने देखा कि श्री अ० दि० जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला, दिगम्बर जैन मुनियों के सम्बन्ध में ऐतिहासिक वार्ता एकत्र करने के लिये प्रयत्नशील है। यह विज्ञप्ति पढ़कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। इतिहास से मुझे प्रेम है। मैं उस इस विज्ञप्ति के फल को देखने की उत्सुकता में था कि एक रोज मुझे संघ के महामंत्री प्रिय राजेन्द्रकुमार जी शास्त्री का पत्र मिला। मेरी उत्सुकता चिन्ता में पलट गई। पत्र में सर्वाङ्गीण दिगम्बर मुनियों के इतिहास विषय की एक सुन्दर पुस्तक लिख देने की प्रेरणा थी। इस प्रेरणा को यों ही टाल देने की हिम्मत भला कैसे होती? उसपर यह प्रेरणा वस्तुतः समयकी आवश्यकता और धर्म की पुकार थी। मुनिधर्म लोक का हार है—दिगंबरत्व उस धर्म की कुञ्जी है। साधारण लोग उस कुञ्जी को खोज बीन के लिये बाट जोहते थे व्याकुल हों, तो भला एक धर्मवत्सल कैसे चुप रहे! बस, सामर्थ्य और शक्ति का ध्यान न करके बड़े संकोच के साथ मैंने यह उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उस स्वीकृति का ही फल प्रस्तुत पुस्तक है।

पुस्तक क्या है? कैसी है? इन प्रश्नों का उत्तर देना मेरा काम नहीं है। मैंने तो मात्र धर्मप्रेम से प्रेरित होकर 'सत्य' के प्रचार के लिये इसको लिख दिया है। हिन्दू—मुसलमान—ईसाई—यहूदी—सबही मतवाले लोग इसे पढ़ें और अपनी बुद्धि की तुला (तराजू) पर इसे तौलें और फिर देखें, दिगम्बरत्व मनुष्य समाज की भलाई के लिये कितनी जरूरी और उपयोगी चीज़ है! इस दृष्टि को सामने रख कर ही इस

५२. जैसासं०—जैन साहित्य संशोधक, त्रैमासिक पत्र; सं० श्री जिनविजय (पूना)

५३. जैसिभा०—जैनसिद्धान्तभास्कर; सं० श्री पद्मराज जैन

५४. जैहि०—जैन हितैषी; सं० श्री नाथूराम—श्री जुगलकिशोर जी (बम्बई)

५५. दिजै०—दिगम्बर जैन; सं० श्री मूलचन्द किसनदास कापड़िया (सूरत)

५६. पुरातत्व—गुजराती त्रैमासिक पत्र; सं० श्री जिनविजयजी (अहमदाबाद)

५७. वीर—भा० दि० जैन परिषद् का मुखपत्र; सं० बा० कामताप्रसाद जैन व पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल (बिजनौर)

अंग्रेजी भाषा के ग्रंथ:—

58. ADJB.='A Dictionary of Jain Bibliography' by V. S. Tank. (Arrah 1916)

59. AGT.='A Guide to Taxilla' by Sir John Marshall (Calcutta, 1918)

60. AI.='Ancient India' by J. W. Mc. Crindle (1877 & 1901)

61. AISJ.='An Indian Sect of the Jainas' by Prof. Buhler (London, 1903)

संकेताक्षर-सूची ।

नोट—प्रस्तुत पुस्तक को लिखने में जिन ग्रन्थों से सहायता ली गई है, उनका उल्लेख निम्नलिखित संकेताक्षरों में यथास्थान कर दिया गया है। पाठकगण संकेताक्षर का भाव इस पत्र से जान लें। उक्त प्रकार सहायता लेने के लिये इन ग्रन्थों के लेखकों के हम आभारी हैं :—

हस्तलिखित ग्रन्थ :—

१. भावकर्मनी १४८ प्रकृतिनो विचार—मुनि वैराग्यसागरकृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

२. उत्तरपुराण भाषा—कवि खुशालचन्द कृत (श्री दि० जैन मंदिर भंडार अलीगंज)

३. पंचकल्याणक पूजा पाठ—मुनि श्रीभूषणकृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

४. भक्तामर चरित्र—कवि विनोदीलालकृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

५. भावत्रिभंगी—जैन मंदिर अलीगंज (एटा)

६. मैनपुरी जैन गुटका—बड़ा पंचायती मंदिर, मैनपुरी में विराजमान।

७. यशोधर चरित्र—कवि पन्नालाल कायस्थ विरचित (श्री दि० जैन मंदिर मैनपुरी)

८. श्री जिनसहस्रनाम—मुनि धर्मचन्द्र कृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

९. श्री पद्मपुराण भाषा—कवि खुशालचन्द्र कृत (श्री दि० जैनमंदिर अलीगंज)

१०. श्री यशोधर चरित्—श्री सोमकीर्ति कृत (श्री दि० जैन मंदिर अलीगंज)

संस्कृत-हिन्दी-गुजराती आदि मुद्रित ग्रंथ :—

१. अष्ट०—अष्टपाहुड; श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत (श्री अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला बम्बई)

२. आईन०—आईन-ए-अकबरी—(फ़ारसी) नवलकिशोर प्रेस लखनऊ (१८९१)

३. आया०—आयारंग-सुत्त, श्वेताम्बर आगम-ग्रन्थ, श्री० मुनि अमोलक ऋषिके हिंदी अनुवाद सहित (हैदराबाद द्वितीय संस्करण)

४. आरोग्य०—आरोग्यदिग्दर्शन, ले० महात्मा गाँधी (बम्बई, १९०९)

५. ईशाद्य०—ईशाद्यष्टोत्तरशतोपनिषद् ed. W. L. Shastri-Panisikar (3rd. ed. Nirnaya-Sagar Press 1925)

६. जैन०—जैनधर्म, प्रो० ग्लासेनाप्पके जर्मन ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद (भावनगर १९३०)

85. NJ. = 'Nudity of the Jaina Saints' by Mr. C. R. Jain (Delhi 1931)

86. OII. = 'Original Inhabitants of India' by G. Oppert (Madras 1893)

87. Oxford. = 'Oxford History of India' by Sir Vincent A. Smith (Oxford 1917)

88. PB. = 'Psalms of Brethreu' ed. Mrs. Rhys Davids (London, 1913)

89. PS. = 'Panchastikaya-sara (S. B. J., Arrah)' ed. Prof. A. Chakraverty.

90. QJMS. = 'Quarterly Journal of the Mythic Society (Bangalore)'

91. QKM. = 'Questions of King Milinda' by T. W. Rhys Davids (S. B. E., —Vol. XXXV)

92. Rishabh. = 'Rishabhadeo, the Founder of Jainism' by Mr. C. R. Jain (Allahabad 1929)

93. SAI. = 'Ancient India' by Prof. S. K. Aiyangar, M. A. (London 1911)

94. SC. = 'Some Contributions of South India to Indian Culture', by Prof. S. K. Aiyangar (1923)

95. SPCIV. = 'Survival of the Prehistoric Civilisation of the Indus Valley.' by R. B. Ramprasad chanda. B. A. (Calcutta 1929)

96. SSIJ. = 'Studies in South Indian Jainism' by Prof. M. S. Ramaswami Ayyangar M. A. & B. Seshagiri Rao M. A. (Madras 1922)

१८. दीघ०—दीघनिकाय (बौद्ध ग्रंथ), (Pali Texts Society Series)

१९. देजै०—देवगढ़ के जैनमंदिर, ले० श्री विश्वम्भरदास गार्गीय।

२०. प्राजैलेसं०—प्राचीन जैन लेखसंग्रह, ले० बा० कामताप्रसाद जैन (वर्धा १९२६)

२१. पंत०—पञ्चतन्त्र (इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग)

२२. फाह्यान—फाह्यान का भारत भ्रमण (इण्डियन प्रेस लि० प्रयाग)

२३. बवि०—बनारसी विलास; कविवर बनारसीदास कृत (बम्बई २४३२ वी०)

२४. बंप्राजैस्मा०—बम्बई प्रान्त के जैनस्मारक, ब्र० शीतलप्रसाद कृत (सूरत, १९२५)

२५. बंविओजैस्मा०—बंगाल बिहार ओड़ीसा के जैनस्मारक, ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत।

२६. भद्र०—भद्रबाहुचरित्र, श्री उदयलाल जी (बनारस, २४३०)

२७. भपा०—भगवान पार्श्वनाथ; ले० बा० कामताप्रसाद जैन (सूरत, २४५०)

२८. भम०—भगवान महावीर, ले० बा० कामताप्रसाद जैन (सूरत, २४५१)

२९. भमबु०—भगवान महावीर और म० बुद्ध, ले० बा० कामताप्रसाद जैन (सूरत, २४५३)

३०. भट्टी०—भट्टारकमीमांसा (गुजराती); (सूरत, २४३८)

३१. भाइ०—भारतवर्षका इतिहास; प्रो० ईश्वरीप्रसाद कृत (इंडियन प्रेस)

३२. भप्रारा०—भारतके प्राचीन राजवंश; सा० श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊकृत भाग १—२ (बम्बई १९२० व १९२५)।

३३. मजैइ०—मराठी जैनांच्या इतिहास; श्री अनंत-तनय कृत (बेलगांव १९१८ ई०)

३४. मज्झिम०—मज्झिमनिकाय (बौद्ध ग्रंथ) (Pali Texts Society Series)

३५. मप्राजैस्मा०—मध्यप्रांतीय जैनस्मारक; ब्र० शीतल प्रसादजी कृत (सूरत)

३६. मजैस्मा०—मद्रास, मैसूर प्रान्तीय जैनस्मारक; ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत (सूरत, २४५४)

३७. मूला०—मूलाचार; श्री वट्टकेर स्वामी कृत

३८. रत्ना०—रत्नकरण्डक श्रावकाचार; पं० श्री जुगलकिशोर मुख्तार (मा० ग्रं० बम्बई, १९८२)

३९. राइ०—राजपूताने का इतिहास; रा० ब० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा (अजमेर १९२५)

४०. लाटी०—लाटीसंहिता; श्री पं० दरबारीलाल द्वारा संपादित (मा० ग्रं० बम्बई १९८४)

४१. विर०—विद्वद्रत्नमाला; श्री नाथूराम प्रेमी कृत (बम्बई १९१२ ई०)

४२. विश्वको०—विश्वकोष, सं० श्री नगेन्द्रनाथ वसु (कलकत्ता)

४३. वृजैश०—वृहत् जैनशब्दार्णव भा० १; सं० श्री बा० बिहारीलाल जी 'चैतन्य' (बाराबंकी १९२५ ई०)

४४. वेजै०—वेद पुराणादि ग्रंथों में जैनधर्मका अस्तित्व, श्री मक्खनलाल कृत (दिल्ली १९३०)

४५. सजै०—सनातनजैनधर्म; श्री चम्पतराय कृत

४६. सागार०—सागारधर्मामृत; सं० श्रीलालारामजी (सूरत २४४४)

४७. संप्राजैस्मा०—संयुक्त प्रान्तीय जैनस्मारक, श्री ब्र० शीतलप्रसाद जी कृत (प्रयाग १९२३)

४८. सस०—सूरीश्वर और सम्राट्, ले० श्रीकृष्णलाल (आगरा १९८०)

४९. श्रुता०—श्रुतावतार कथा, श्री इन्द्रनन्दि कृत (बम्बई २४४७ वीर सं०)

५०. हुभा०—हुयेनत्सांग का भारतभ्रमण, श्री ठाकुरप्रसाद शर्मा (इंडियनप्रेस प्रयाग १९२९ ई०)

पत्र-पत्रिकायें :—

५० अ. अनेकान्त—मासिक पत्र, संपादक श्री जुगलकिशोर मुख्तार (दिल्ली)

५१. जैमि०—जैनमित्र, बम्बई प्रां० दि० जैन सभा का मुखपत्र (सूरत)

४२. जैसासं०—जैन साहित्य संशोधक, त्रैमासिक पत्र; सं० श्री जिनविजय (पूना)

४३. जैसिभा०—जैनसिद्धान्तभास्कर, सं० श्री पद्मराज जैन

४४. जैहि०—जैन हितैषी; सं० श्री नाथूराम—श्री जुगलकिशोर जी (बम्बई)

४५. दिजै०—दिगम्बर जैन; सं० श्री मूलचन्द किसनदास कापड़िया (सूरत)

४६. पुरातत्त्व—गुजराती त्रैमासिक पत्र; सं० श्री जिनविजयजी (अहमदाबाद)

४७. वीर—भा० दि० जैन परिषद् का मुखपत्र; सं० बा० कामताप्रसाद जैन व पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल (बिजनौर)

अंग्रेजी भाषा के ग्रंथ :—

४८. AIJB = 'A Dictionary of Jain Bibliography' by U. S. Tank (Arrah 1916)

४९. AGT = 'A Guide to Taxila' by Sir John Marshall (Calcutta, 1918)

५०. AI = 'Ancient India' by J. W. Mc Crindle (1877 & 1901)

५१. AISJ = 'An Indian Sect of the Jainas' by Prof. Buhler (London, 1903)

62. AIT = 'Ancient Indian Tribes' by Dr. B. C. Law (Lahore, 1926)

63 AR. = 'Asiatic Researches', ed. Sir William Jones, Vol. III (1799) & Vol. IX (1809)

64. ASM. = 'A Study of the Mahavastu' by Dr. B. C Law (Calcutta 1930)

65 Bernier = 'Travels in the Mogul Empire' by Dr. Francis Bernier (Oxford, 1914)

66 BS. = 'Buddhistic Studies' by Dr B C. Law (Calcutta 1931)

67. CHI. = 'Cambridge History of India', Vol I ed. Prof. E. J. Rapson—1922

68. DJ. = 'Der Jainismus' (German) by Prof. Dr. Helmuth Von Glasenapp. Ph. D. Berlin 1925)

69 EB. = 'Encyclopaedia Britannica' 11th. ed. Vol. XV)

70 EHI. = 'Early History of India' 4th. ed) by Sir Vincent Smith (Oxford. 1924)

71 Elliot = 'History of India as told by its Historians' by Sir H. M. Elliot & Prof. John Dowson, Vol. I (1867) & III (London, 1871)

85. NJ. = 'Nudity of the Jaina Saints' by Mr. C. R. Jain (Delhi 1951)

86. OII. = 'Original Inhabitants of India' by [illegible] Oppert (Madras 1893)

87. Oxford. = 'Oxford History of India' by Sir Vincent A. Smith (Oxford 1917)

88. PB. = 'Psalms of Brethren' ed. Mrs. Rhys Davids (London, 1913)

89. PS. = 'Panchastikaya-sara (S. B. J., Arrah)' ed. Prof. A. Chakravarty

90. QJMS. = 'Quarterly Journal of the Mythic Society (Bangalore)'

91. QKM. = 'Questions of King Milinda' by T. W. Rhys Davids (S. B. E., —Vol XXXV)

92. Rishabh. = 'Rishabhadeo, the Founder of Jainism' by Mr. C. R. Jain (Allahabad 1929)

93. SAI. = 'Ancient India' by Prof [illegible] K. Aiyangar, M. A. (London 1911)

94. SC. = 'Some Contributions of South India to Indian Culture', by Prof. S. K. Aiyangar (1923)

95. SPCIV. = 'Survival of the Prehistoric Civilisation [illegible] the Indus Valley.' by R. [illegible] Ramprasad chanda. B. A. (Calcutta 1929)

96. SSIJ. = 'Studies in South Indian Jainism' by Prof. M. S. Ramaswami Ayyangar M. A. & B. Seshagiri Rao M. A. (Madras 1922)

शुद्धाशुद्धि-पत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	१	यथा जातरूप	यथाजातरूप
१५	१०	परमभाववर्तं	परमभागवतं
१७	२	शश्मिश्रकोपमि-	शश्मिश्रकोपमि-
२४	४	प्रभृमियोंऽस्यक	प्रभृतयोऽस्यक
२५	५	ध्यानश्रयरः	ध्यानतत्परा
२६	३	स्वाहेत्वा हेन	स्वाहेत्यानेन
३०	१६	IIIO.	IHQ.
३०	२१	JIIO.	IHQ.
३५	६	fanntics	fanatics
३५	१०	reopect	respect
५५	६	सोय	साय
५७	५	ठाणांङ्ग	ठाणाङ्ग
„	२१	डाणा०	अङ्क०
„	२२	IHQ.	IHQ.
५८	२३	कुण्वक्षा	कुण्वक्षा
„	२४	महीक	महीक
५६	१	महीक	महीक
„	१५	शप	मप
६०	१३	तपोरक्त	तपोरत्न

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२	१७	दामवहानुम्या	द्यांप्रदाद्य्या
७६	२०	प्रो० मस्सोर	प्रो० मस्पोर
७८	१६	वर्द्धमानात्मान्	वर्द्धमानात्मात्
८६	७	जिवधर्म	जिनधर्म
८९	१४	पृ० ५०	पृ० ५
८४	२४	ढीक	ठीक
८६	८	क	को
६०	३०	bought	brought
[illegible]	२१	संयुत०	संयुक्त०
१०४	२१	०, भा०	वैदि०, भा०
१०६	१६	पादावन्	पादावत
११४	४	अमय	अभय
११६	१८	Kharvela	Kharvela
"	२०	Kanvar	Kanvas
"	२२	CHK	CHL
१२३	१	वह	
१२७	५	religione	religious
१३०	४	शान्तिकीर्ति	कान्तिकीर्ति
१३६	१६	Cotting	rotting

उत्सर्ग

"णमो अरहंताण, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।"

प्रभो,

भक्तिप्लावित-हृदय द्वारा प्रस्फुटित यह साहित्य-सुमन आपके पूज्य-पादों में सविनय उत्सर्ग है।

चरणाम्बुज-चञ्चरीकः—

अजीमगंज,
(पथ)
१-१-१९५२

सोते और आमन्द्रेलियां करतेथे । इसलिये कहते हैं कि मनुष्यकी आदर्श स्थिति दिगम्बरहै । वस्त्र पहननाही उसके लिये अश्रेष्ठहै । इसमें उसके लिये अशिष्टता और असभ्यताकी कोई बात नहींहै; क्योंकि दिगम्बरत्व अथवा नग्नत्व स्वयं अशिष्ट अथवा असभ्य वस्तु नहींहै । वहतो मनुष्यका प्राकृत रूपहै । ईसाई मतानुसार आदम और हव्वा नङ्गे रहते हुये कभी न लजाये और न वे विकारके चंगुलमें फंसकर अपने सदाचारसे हाथ धो बैठे । किन्तु जब उन्होंने बुराई-भलाई, पाप पुण्यका वर्जित फल चाखलिया, वे अपनी प्राकृत दशाको खोबैठे—सरलता उनकी जाती रही । वे संसारके साधारण प्राणी होगये ! बच्चेको लीजिये, उसे कभीभी अपने नग्नत्वके कारण लज्जाका अनुभव नहीं होता और न उसके माता-पिता अथवा अन्य लोगही उसकी नग्नता पर नाक भौं सिकोड़ते हैं । अशक्त रोगीकी परिचर्या धाय करतीहै—वह रोगी अपने कपड़ोंकी सारसंभाल स्वयं नहीं कर पाता; किन्तु धाय रोगीकी सब सेवा करते हुए जरासी अशिष्टता अथवा लज्जाका अनुभव नहीं करती । यह कुछ उदाहरण हैं जो इस बातको स्पष्ट करतेहैं कि नग्नत्व वस्तुतः कोई बुरी चीज़ नहींहै । प्रकृति माता क्या किसी कमरेमें [illegible] ढकी है ? तो फिर मनुष्य नङ्गेपनसे क्यों झिझकता है ? क्यों आज लोग नङ्गा रहना समाजमर्यादाके लिये अशिष्ट और घातक समझते हैं ? इन प्रश्नोंका एक सीधासा उत्तरहै—"मनुष्यका नैतिक पतन चरम

मीमांसा आज पहुंच चुकाहै—वह पापमें इतना मग्न हुआहै कि उसे मनुष्यकी आदर्श स्थिति दिगम्बरत्व पर घृणा आती है। अपनेमनको संतोषकर पापके गर्तमें वस्त्रोंकी आड़ लेनाही उससे श्रेष्ठ मालूम होताहै!" किन्तु वह भूलताहै, पर्दा पापकी जड़ है—वह गंदगीका ढेरहै। बस, जो उसकी समझ—विवेक—से काम लेना जानताहै, वह गंदगीसे अलग रह सकता और नंगेही अपनी आदर्श स्थिति दिगम्बरत्वको सिद्ध कर सकताहै!

वस्त्रोंका परिधान मनुष्यके लिये आवश्यक नहींहै और न यह आवश्यकही है। प्रकृतिने प्राणीमात्रके शरीरकी गठन इस प्रकारकी है कि यदि वह प्राकृत वेषमें रहे तो उसका स्वास्थ्य निरोग और श्रेष्ठ तथा उसका सदाचार उत्कृष्ट रहे! जिन विद्वानोंने इन नंगी जातियोंको स्वास्थ्यकी दृष्टिसे देखा है, जो नंगे रहतेहैं, वे इसी परिणाम पर पहुंचेहैं कि नग्न प्राकृत वेषमें रहने वाले 'जंगली' लोगोंका स्वास्थ्य शहरों में बसने वाले वस्त्राभूषितसभ्य 'सज्जनों' से कहीं दर्जे अच्छा होताहै और सदाचार विषयमें भी वे शहरवालोंसे बढ़े चढ़े होतेहैं। इस कारण वे एक सभ्य परिवारकी प्रधानता-युक्त सभ्यताको उच्च कोटि पर पहुंचके स्वीकार नहीं करते। उनका यह कथन है भी ठीक, क्योंकि प्रकृतिको कोई कृत्रिमता नहीं

---

[1] "Having given some study to this subject,

कर सकती ! म० गाँधीके निम्न ग्रन्थमें इस विषयमें द्रष्टव्य हैं :—

"वास्तवमें देखा जाय तो कुदरतने चर्मके रूपमें मनुष्यको योग्य पोशाक पहनायी है। नग्न शरीर कुरूप देख पड़ता है, ऐसा मानना हमारा भ्रम मात्र है। उत्तम २ सौन्दर्यके चित्र तो नग्न रूपमें ही देख पड़ते हैं। पोशाकसे साधारण अङ्गोंको ढककर हम मानो कुदरतके दोषोंको दिखाते रहते हैं। जैसे जैसे हमारे पास ज्यादा पैसे होते जाते हैं वैसेही वैसे हम सजावट बढ़ाते जाते हैं। कोई किसी भाँति और कोई किसी भाँति रूपवान बनना चाहते हैं और बनठन कर काचमें मुंह देख प्रसन्न होते हैं कि 'वाह मैं कैसा खूबसूरत हूं !' बहुत दिनोंसे ऐसेही अभ्यासके अगर हमारी दृष्टि खराब न होगई हो तो हम तुरन्त देख सकेंगे कि

I may say that Rev. J. F. Wilkinson's remarks upon the superior morality of the races that do not wear clothes is fully borne out by the testimony of the travellers............ It is true that wearing of clothes goes with a higher state of the arts and to that extent with civilisation; but it is on the other hand attended by a lower state of health and morality so that no clothed civilisation can expect to attain to a high rank."

—"Daily News, London" of 18th. April 1913.

.........They were all prophets (Saints) and they had nothing with them and were naked."†

अर्थात्—वह जो मुक्ति की प्राप्ति में श्रद्धा रखते थे एकान्त में पर्वत पर आ जमे.........वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नहीं था और वे नंगे थे।

अर्पासल पोटर ने नंगे रहने की आवश्यक्ता और विशेषता को निम्न शब्दों में बड़े अच्छे ढंग पर "Clementine Homilies" में दर्शा दिया है :—

"For we, who have chosen the future things, in so far as we possess more goods than these, whether they be clothings, or.........any other thing, possess sins, *because we ought not to have anything.................To all of us possessions are sins...............The deprivation of these, in whatever way it may take place is the removal of sins*".*

अर्थात्—क्योंकि हम जिन्होंने भविष्य की चीज़ों को चुन लिया है, यहां तक कि हम उनसे ज़्यादा सामान रखते हैं, चाहे वे फिर कपड़े लत्ते हों या दूसरी कोई चीज़, पाप को रक्खे हुये हैं; क्योंकि हमें कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये। हम सब के लिये परिग्रह पाप है।

† NJ., P. 6

* Ante Nicene Christian Library, XVII. 240 & NJ., P. 7

[illegible] देखी नहाती नहीं और शुक्राचार्य अपने निकले चले गये। इस घटना की थोड़ी देर बाद शुक्राचार्य के पिता वहां आ निकले। उन को देखते ही देवकन्यायें नहाना-धोना भूल गईं। झटपट वे जल के बाहर निकलीं और अपने वस्त्र उन्होंने पहन लिये। एक नंगे युवा को देख कर तो उन्हें ग्लानि और लज्जा न आई किन्तु एक वृद्ध शिष्ट-से-दिखते 'सज्जन' को देख कर वे लजा गईं; भला इस का क्या कारण? यही न कि नंगा युवा अपने मन में भी नंगा था—उसे विकार के नहीं आवेग था। इस के विपरीत उसका वृद्ध और शिष्ट पिता विकार से रहित न था। वह अपने शिष्ट वेष (?) में इस विकार को छिपाये रखने में सफल था; किन्तु दिगम्बर युवा के लिए वैसा करना असंभव था। इसी कारण वह निर्विकारी और सदाचारी था! अतः मानना होगा कि सदाचार की मात्रा नंगे रहनेमें अधिक है। संक्षेप—दिगम्बरत्व का यह सूपथ है। विकारभाव को जीते बिना ही कोई नंगा रहकर प्रशंसा नहीं [illegible] सकता। निर्विकारी होना दिगम्बरत्व के लिये जरूरी है। न वह सुखी हो सकता है और न उसे विवेक-वेश मिल सकता है। इसी लिये भगवद् कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

> णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसार सायरे भमइ।
> णग्गो न लहइ बोहिं, जिण भावणवज्जिओ सुइरं॥*

---

*भाव पाहुड दि० माला—षट्० पृ० २०९-२१०

भावार्थ—नंगा हुआ पाता है, वह संसार सागर में भ्रमण करता है, उसे बोधि विशुद्धि प्राप्त नहीं होती, क्योंकि नंगा होते हुए भी वह जिनभावना से दूर है! इसका मतलब यही है कि जिनभावना से युक्त नग्नता ही पूज्य है—उपयोगी है। और जिन भावना से मतलब रागद्वेषादि विकार भावों को जीत लेना है। इस प्रकार नंगा रहना उसी के लिये उपादेय है जो रागद्वेषादि विकार भावों को जीतने में लग गया है—अहर्निश होकर प्राकृत वेष में रह रहा है। संसार के पाप पुण्य, बुराई-भलाई का जिसे भान तक नहीं है, वही दिगम्बरत्व धारण करने का अधिकारी है। और चूंकि सर्वसाधारण गृहस्थों के लिये इस परमोच्च स्थिति को प्राप्त कर लेना सुगम नहीं है, इसलिये भारतीय ऋषियों ने इसका विधान गृहत्यागी वनवासी साधुओं के लिये किया है। दिगम्बर मुनि ही दिगम्बरत्व को धारण करने के अधिकारी हैं, यद्यपि यह बात जरूर है कि दिगम्बरत्व मनुष्यकी आदर्श स्थिति होने के कारण मानव-समाज के पथ-प्रदर्शक श्री भगवान ऋषभदेव ने गृहस्थों के लिये भी महीने के पर्वदिनों में नंगे रहने की आवश्यकता का निर्देश किया था† और भारतीय गृहस्थ [illegible] के इस उपदेश का पालन पहले जमाने तक करते रहे थे।

[illegible] प्रकार उक्त वचनामृत से यह स्पष्ट है कि दिगम्बर-

---

† सागार० अ० ७ श्लोक ७ । मणु० पृ० १०८-२०० ।

रत्व मनुष्य की आदर्श स्थिति है—आर्जव और सदाचार का वह पोषक ही नहीं रक्षक है। किन्तु आजकल संसार इतना पाप-ताप से झुलस गया है कि उस पर एक दम दिगम्बर-शरि उतारा नहीं जा सकता। जिन्हें विज्ञान दृष्टि नसीब हो जाती है, वही अभ्यास करके एक दिन निर्विकारी दिगम्बर मुनि के वेष में विचरते हुए दिखाई पड़ते हैं। उन को देखकर लोगों के मस्तक स्वयं झुक जाते हैं। वे ज्ञान-ध्यान और तपो मग्न लोककल्याण में निरत रहते हैं। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, ऊंच-नीच, पशु-पक्षी—सब ही प्राणी उन के दिव्यरूप में सुख-शांति का अनुभव करते हैं। भला-प्रकृति प्यारी क्यों न हो? दिगम्बर साधु प्रकृति के अनुरूप हैं। उन का किसी से द्वेष नहीं—वे तो सब के हैं और सब उन के हैं—वे सर्वप्रिय और सदाचार की मूर्ति होते हैं। यदि कोई दिगम्बर होकर भी इस प्रकार विषयवासना से मुक्त नहीं है तो जैनाचार्य कहते हैं कि उसका नग्नवेष धारण करना निरर्थक है—परमोद्देश्यसे वह भटका हुआ है—इह लोक और परलोक, दोनों ही उस के नष्ट हैं। ‡ बस, दिगम्बरत्व वहीं शोभनीय है जहां परमोद्देश्य दृष्टि से ओझल नहीं किया गया है। तब ही तो वह मनुष्य की आदर्श स्थिति है।

‡ "निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स, जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए ॥४९॥"

—उत्तराध्ययन अ० २०

"In vain he adopts nakedness, who errs

कारण वह अपने निजत्व—आत्मत्व—को धीरे २ छोड़ बैठता है। इसी तरह जीवात्मा स्वभाव से सच्चिदानन्द रूप होते हुये भी संसार की माया-ममता में पड़ कर स्वानुभवानन्द से वंचित है। इसका मुख्य कारण जीवात्मा की राग-द्वेष जनित परिणति है। रागद्वेषमई भावों से प्रेरित होकर अपने मन-वचन और काय की क्रिया जाग्रत् करता है। इसका परिणाम यह होता है कि उस जीवात्मा में लोक में भरी हुई पौद्गलिक कर्म-वर्गणायें आकर चिपट जाती हैं और उनका आवरण जीवात्मा के ज्ञान दर्शन आदि गुणों को प्रकट नहीं होने देता। जितने अंशों में वे आवरण कम या ज्यादा हैं उतने ही अंशों में आत्मा के स्वाभाविक गुणों का कम या ज्यादा प्रकाश प्रकट होता है। यदि जीवात्मा अपने निज-स्वभाव को पाना चाहता है तो उसे इन सब ही कर्म संबन्धी आवरणों को नष्ट कर देना होगा, जिनका नष्ट कर देना संभव है।

इस प्रकार जीवात्मा के धर्म—स्वभाव—के घातक उसके पौद्गलिक बन्धन हैं। जीवात्मा को आत्म-स्वातंत्र्य प्राप्त करने के लिये इस पर-बन्धन को बिल्कुल छोड़ देना होगा। पार्थिव संसर्गों से उसे अछूता हो जाना होगा। लोक और आत्मा—दोनों ही क्षेत्रों में वह एक मात्र अपनी उद्देश्य-प्राप्ति के लिये सतत उद्योगी रहेगा। बाहरी और भीतरी सब ही प्रपंचों से उसका कोई सरोकार न होगा। परिग्रह नाम

नाश को वह न रख सकेगा। यथा आवश्यक में रह कर वा अपने विभावभाव रागादि कषाय शत्रुओं को नष्ट करने पर तुल पड़ेगा। ज्ञान और ध्यान शस्त्र लेकर वह कर्म-शत्रुओं को बिल्कुल नष्ट कर देगा। और तब वह अपने स्वरूप को पा लेगा। किन्तु यदि वह सत्य मार्ग से ज़रा भी विचलित हुआ और बाल बराबर परिग्रह के मोह में आ पड़ा तो उसका कहीं ठिकाना नहीं! इसीलिये कहा गया है कि—

बालग्गकोडिमत्तं परिग्गहगहणं ण होइ साहूणं ।
भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ॥ १७॥

भावार्थः—बाल के अग्रभाग—नोकके बराबर भी परिग्रह का ग्रहण साधु के नहीं होता है। वह आहार के लिये भी कोई बर्तन नहीं रखता—हाथ ही उसके भोजनपात्र हैं और भोजन भी वह दूसरे का दिया हुआ एक स्थान पर और एक दफे ही वैसा ग्रहण करता है जो प्रासुक है—स्वयं उसके लिये न बनाया गया हो।

अब भला कहिये, जब भोजन से भी कोई ममता न रक्खी गई—दूसरे शब्दों में जब शरीर से ही ममत्व हटा लिया गया तब अन्य परिग्रह दिगम्बर साधु कैसे रक्खेगा? उसे रखना भी नहीं चाहिये, क्योंकि उसे तो अक्षय सुख आत्मस्वातंत्र्य प्राप्त करना है, जो संसार के पार्थिव पदार्थों से सर्वथा भिन्न है! इस अवस्था में वह वस्त्रों का परिधान भी कैसे रख सकेगा? वह तो उसके मुक्ति-मार्ग में अर्गला

बन जावेंगे। फिर वह कभी भी कर्म-बन्धन से मुक्त न हो पायगा। इसी लिये तत्त्ववेत्ताओं ने साधुओं के लिये कहा है कि—

[illegible]

[illegible]

अर्थात्—मुनि यथाजातरूप हैं—जैसा जन्मता बालक नग्नरूप होता है वैसा नग्नरूप दिगम्बर मुद्रा का धारक है—वह अपने हाथ में तिलतुष मात्र भी कुछ ग्रहण नहीं करता। यदि वह कुछ भी ग्रहण करले तो वह निगोद में जाता है।

परिग्रहधारी के लिये आत्मोन्नति की पराकाष्ठा पा लेना असंभव है। एक लंगोटीवत् के परिग्रह के मोह से साधु किस प्रकार पतित हो सकता है, यह आख्यान सबकी की जानी बूझी बात है। प्रकृति भी नग्नता की सहानुभूति चाहती है—तब ही वह प्रसन्न होकर अपने पूरे सौन्दर्य को विकसित करती है। चाहे पैगम्बर या तीर्थंकर ही क्यों न हो, यदि वह गृहस्थाश्रम में रह रहा है—समाज मर्यादा के आत्मविमुख बन्धन में पड़ा हुआ है—तो वह भी अपने आत्मा के सहज रूप को नहीं पा सकता! इसका [illegible] कारण है। वह यह कि धर्म एक विज्ञान है। उसके नियम प्रकृति के अनुरूप अटल और निश्चल हैं। उनमें कहीं किसी जमाने में भी किसी कारण से रंचमात्र अन्तर नहीं पड़ सकता है। धर्म विज्ञान कहता है कि आत्मा स्वाधीन और सुखी तब ही हो सकता है

अब यह पर-स्वरूप, शुद्ध के संपर्क से मुक्त हो जावे। अब हम नियम के होते हुये भी धार्मिक वस्त्र-परिधान को रखकर कोई यह चाहे कि मुझे आत्मस्वातंत्र्य मिल जाय तो उसकी यह चाह आकाश-कुसुम को पाने की आशा से बढ़कर न कही जावेगी। इसी कारण जैनाचार्य पहले ही सावधान करते हैं कि—

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइवि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥२३॥

भावार्थ—जिन शासन में कहा गया है कि वस्त्रधारी मनुष्य मुक्ति नहीं पा सकता है; जो तीर्थंकर होवें तो वह भी गृहस्थदशा में मुक्ति को नहीं पाते हैं—मुनि दीक्षा लेकर जब दिगम्बर वेष धारण करते हैं तब ही मोक्ष पाते हैं। अतः नग्नत्व ही मोक्षमार्ग है—बाकी सब लिंग अमार्ग हैं!

धर्म के इस वैज्ञानिक नियम के कायल संसार के प्रायः सब ही मनुष्य प्रकारान्तर रहे हैं, जैसे कि आगे के पृष्ठों में व्यक्त किया गया है और उनका इस नियम—दिगम्बरत्व—को मान्यता देना ठीक भी है; क्योंकि दिगम्बरत्व के बिना धर्म का मूल्य कुछ भी शेष नहीं रहता—वह धर्मस्वरूप रह ही नहीं पाता है। इस प्रकार धर्म और दिगम्बरत्व का सम्बन्ध स्पष्ट है!

[३]

दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक ऋषभदेव !

—:०:—

'पुराणमीशं मार्तण्डं [illegible] परमेश्वरम्।
[illegible] [illegible] ।—[illegible]

दिगम्बरत्व प्रकृति का एक रूप है। इस कारण उसका आदि और अन्त कहा ही नहीं जा सकता। वह तो एक सनातन नियम है, किन्तु तब पर भी इस परिच्छेद के शीर्षक में श्री ऋषभदेव जी को दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक लिखा है। इसका एक कारण है। किसी भी सज्जनके निकट दिगम्बरत्व केवल नग्नता मात्र का द्योतक नहीं है, पूर्व परिच्छेदों को पढ़ने से यह बात स्पष्ट हो गई है। वह रागादि विभाव भाव को जीतने वाला एक खास रूप है और जनता के इस रूप का संस्कार कभी न कभी किसी महापुरुष द्वारा जागृत हुआ होगा। जैनशास्त्र कहते हैं कि इस कल्पकाल में धर्म के आदि प्रचारक श्री ऋषभदेव जी ने ही दिगम्बरत्व का सबसे पहले उपदेश दिया था।

यह ऋषभदेव अन्तिम मनु नाभिराय के सुपुत्र थे और वह एक अत्यन्त प्राचीन काल में हुये थे, जिसका पता लगा लेना सुगम नहीं है। किन्तु शास्त्रों में जैनों के इन पहले तीर्थ-

इन को ही विष्णु का आठवां अवतार माना है और वहां भी इन्हें दिगम्बरत्व का आदि प्रचारक बताया है। श्रीमाचार्य इन्हें 'योगिकल्पतरु' कहकर स्मरण करते हैं।

हिन्दुओं के श्रीमद्भागवत में इन्हीं ऋषभदेव का वर्णन है और उसमें उन्हें परमहंस—दिगम्बर—धर्म का प्रतिपादक लिखा है; यथा—

'एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद् भगवानृषभोपदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणाम् महामुनीनां भक्तिज्ञान वैराग्यलक्षणम् पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितं शरीरमात्र परिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात् प्रवव्राज ॥२८॥' भागवतस्कंध ५ अ० ५

अर्थात्—"इस भांति महायशस्वी और सबके सुहृद् ऋषभ भगवान् ने, यद्यपि उनके पुत्र सब भांति से चतुर थे, परन्तु मनुष्यों को उपदेश देने के हेतु, प्रशान्त और कर्मबंधन से रहित महामुनियों को भक्तिज्ञान और वैराग्यके दिखाने वाले परमहंस आश्रम की शिक्षा देने के हेतु, अपने सौ पुत्रों में ज्येष्ठ परम भागवत, हरि भक्तों के सेवक भरत को पृथ्वी पालन के हेतु, राज्याभिषेक कर स्वयं ही संसार को छोड़ दिया और आत्मा में होमाग्नि का आरोप कर केश खोल उन्मत्त की भांति नग्न हो, केवल शरीर को संग ले, ब्रह्मावर्त से सन्यास धारण कर चल निकले।"

इस उद्धरण के मोटे टाइप के अक्षरों से ऋषभदेव का परमहंस—दिगम्बर-धर्म-शिक्षक—होना स्पष्ट है।

तथा इसी ग्रन्थ के स्कंध २ अध्याय ७ पृ० ७४ में इन्हें "दिगम्बर और जैनमत का चलाने वाला" बतलाके टीकाकार ने लिखा है* मूल श्लोक में उनके दिगम्बरत्व को ऋषियों द्वारा वंदनीय बताया है —

> नाभेरसा वृषभ आसतु देव सूनु—
> र्यो वै चचार समदृग् जड योगचर्याम्।
> यत् पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति
> स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्त संगः ॥१०॥

उधर हिन्दुओं के प्रसिद्ध योगशास्त्र 'हठयोगप्रदीपिका' में सबसे पहले मंगलाचरण के तौर पर आदिनाथ ऋषभदेव की स्तुति की गई है और वह इस प्रकार है‡ :—

> श्री आदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै,
> येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।
> विभ्राजते प्रोन्नतराज योग—
> मारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव ॥१॥

अर्थात्—"श्री आदिनाथ को नमस्कार हो, जिन्होंने उस हठयोग विद्या का सर्वप्रथम उपदेश दिया जोकि बहुत ऊँचे राजयोग पर आरोहण करने के लिये नसैनी के समान है।"

---

* जिनेन्द्रमत दर्पण, प्रथम भाग पृ० १०
‡ "अनेकान्त" वर्ष १ पृ० ५३८

तत्त्वब्रह्ममार्ग में भले प्रकार सम्पन्न, शुद्ध हृदय, प्राणधारण के निमित्त यथोक्त समय पर अधिक से अधिक पाँच घरों में विहार कर कर-पात्र में अयाचित भोजन लेने वाला तथा लाभालाभ में समचित्त होकर निर्ममत्व रहने वाला, शुक्ल-ध्यान परायण, अध्यात्मनिष्ठ, शुभाशुभ कर्मों के निर्मूलन करने में तत्पर परमहंस योगी पूर्णानन्द का अद्वितीय अनुभव करने वाला वह ब्रह्म मैं हूँ, ऐसे ब्रह्म प्रणव का स्मरण करता हुआ भ्रमरकीटक न्याय से—(जैसे भ्रमरी का ध्यान करता हुआ स्वयं भ्रमर बन जाता है, इस रीति से) तीनों शरीरों को छोड़कर देहत्याग करता है, वह कृतकृत्य होता है, ऐसा उपनिषदों में कहा है।'

इस आचरण का प्रायः सारा ही वर्णन दिगम्बर जैन मुनियों की चर्या के अनुसार है, किन्तु इसमें विशेष ध्यान देने योग्य विशेषण 'शुक्लध्यानपरायण' है, जो जैनधर्म की एक खास चीज़ है। "जैन के सिवाय और किसी भी योग ग्रन्थ में 'शुक्लध्यान' का प्रतिपादन नहीं मिलता। पतंजलि ऋषि ने भी ध्यान के शुक्लध्यान आदि भेद नहीं बतलाये। इसलिए योग ग्रंथों में आदि-योगाचार्य के रूप में जिन आदिनाथ का उल्लेख मिलता है वे जैनियों के आदि तीर्थङ्कर श्री आदिनाथ से भिन्न और कोई नहीं जान पड़ते।"‡

'अथर्ववेद के जाबालोपनिषद्' (सूत्र ६) में परमहंस

‡ अनेकान्त, वर्ष १ पृष्ठ ५५२

संन्यासी का एक विशेषण 'निर्ग्रन्थ' भी दिया है* और यह हर कोई जानता है कि इस नाम से जैनी ही एक प्राचीनकाल से प्रसिद्ध हैं। बौद्धों के प्राचीनशास्त्र इस बातका खुला समर्थन करते हैं। जैनधर्म के दो मान्य शब्द को उपनिषद्कार ने ग्रहण और प्रयुक्त करके यह अच्छी तरह दर्शा दिया है कि दिगम्बर साधु मार्ग का मूल स्रोत जैनधर्म है। और उधर विष्णु पुराण इस बात को स्पष्ट करते ही हैं कि ऋषभदेव, जैनधर्म के प्रथम तीर्थंकर ने ही परमहंस दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि श्री ऋषभदेव वेद—उपनिषद् ग्रंथों के रचे जाने के बहुत पहले हो चुके थे। वेदों में स्वयं उनका और २२ वें अवतार वामन का उल्लेख मिलता है×। अतः निस्सन्देह भ० ऋषभदेव ही वह महापुरुष हैं जिन्होंने इस युग की आदि में स्वयं दिगम्बर वेष धारण करके +सर्वज्ञता प्राप्त की थी और सर्वज्ञ होकर दिगम्बर धर्म का उपदेश दिया था। वही दिगम्बरत्व के आदि प्रचारक हैं।

---

* "यथा जातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहः" इत्यादि—दिग० पृ० ८

† जैकोबी प्रभृति विद्वानों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है (Ja. Pt. II. Intro.) × 'वेद' की प्रस्तावना तथा 'सन्तो' देखो।

+ "विष्णुपुराण" में भी श्री ऋषभदेव को दिगम्बर लिखा है। ["Rishabha Deva ... . naked, went the way of the great road." (महाप्रस्थान)"—Wilson's Vishnu Purana, Vol. II (Book II ch. I) pp. 103-104].

* श्री मद्भागवत में ऋषभदेव को 'स्वयं भगवान् और कैवल्यपति' बताया है। (दिग० मा० ३ पृ० ४४४)

दिगम्बरत्व और दि० मुनि

श्री १००८ दिगम्बरत्वके प्रचारक श्री ऋषभनाथ जी और अंतिम प्रचारक श्री महावीर स्वामी। (पृ० १९ व २८)
[ब्रिटिश म्यूज़ियम लन्दन के सौजन्य व आज्ञा से]

[१]

हिन्दू धर्म और दिगम्बरत्व ।

"परमहंसा नाम संवर्तक—आरुणि—श्वेतकेतु—दुर्वास—ऋभु—निदाघ—जड़भरत—दत्तात्रेयादि ।" —जाबालोपनिषद् ६

भगवान् ऋषभदेव जब दिगम्बर होकर वन में आ गये, तो उनकी देखा देखी और भी बहुतसे लोग नंगे होकर इधर उधर घूमने लगे । दिगम्बरत्व के मूल तत्व को वे समझ न सके और इसके मनमाने ढंग से उदरपूर्ति करते हुये वे साधु होने का दावा करने लगे । जैनशास्त्र कहते हैं कि इन्हीं पथभ्रष्टों द्वारा सांख्य आदि जैनेतर सम्प्रदायों की सृष्टि हुई थी* और पीछे के परिच्छेद में स्वयं हिन्दूशास्त्रों के आधार से यह प्रकट किया जा चुका है कि श्री ऋषभदेव द्वारा ही सर्वप्रथम दिगम्बर धर्म का प्रतिपादन हुआ था । इस अवस्था में हिन्दू ग्रंथों में भी दिगम्बरत्व का सम्माननीय वर्णन मिलना आवश्यक है ।

यह बात ठीक है कि हिन्दूधर्म के वेद और प्राचीन तथा वृहत् उपनिषदों में साधु के दिगम्बरत्व का वर्णन प्रायः नहीं मिलता । किन्तु उसके छोटे-मोटे उपनिषदों एवं अन्य ग्रंथों में उसका खास ढंग पर प्रतिपादन किया गया मिलता

---

* आदिपुराण पर्व १८ श्लो० ६१ व (Rishabh. p. 112)

का व्यवहार 'दिगम्बर' साधुके रूप में ही हुआ मिलता है। टीकाकार उत्पल कहते हैं× :—

"निर्ग्रन्थो नग्नः क्षपणकः।"

इसी तरह सायणाचार्यभी निर्ग्रन्थ शब्द को दिगम्बर मुनि का द्योतक प्रगट करते हैं ÷ :—

"कथा कौपीनोत्तरा संगादिनाम् त्यागिनो, यथाजात-रूपधरा निर्ग्रन्था—निष्परिग्रहाः। इति संवर्तश्रुतिः।"

'हिन्दू पद्मपुराण' में दिगम्बर जैन मुनिके मुखसे कहलाया गया है :—

"अर्हन्तो देवता यत्र, निर्ग्रन्थो गुरुरुच्यते।"

अब यदि निर्ग्रन्थके भाव वस्त्रधारी साधु के होते तो दिगम्बर मुनि उसे अपने धर्म का गुरु न बताते। इससे स्पष्ट है कि यहां भी निर्ग्रन्थ शब्द दिगम्बर मुनिके रूपमें व्यवहृत हुआ है।

"ब्रह्माण्डपुराण" के उपोद्घात ३ अ० १४ पृ० १०४ में है :—

"नग्नादयो न पश्येयुः श्राद्धकर्म व्यवस्थितम् ॥३४॥"

अर्थात्—"जब श्राद्धकर्म में लगे तब नग्नादिकों को न देखे।" और आगे इसी पृष्ठ पर ३६ वें श्लोक में लिखा है कि नग्नादिक कौन हैं?

× IHQ. III; 245

÷ वननिर्णयप्रसाद पृष्ठ ५१३—व दि जैं० १०-१-५८

स्थित रूप ऐसा वर्णित है। देखिये "जाबालोपनिषद्" में लिखा है :—

"तत्र परमहंसानामसंवर्तकारुणिश्वेतकेतुदुर्वास ऋभुनिदाघजडभरत दत्तात्रेयरैवतक प्रभृतयोऽव्यक्तलिङ्गा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरन्तस्त्रिदण्डं कमण्डलुं शिक्यं पात्र जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं च इत्येतत्सर्वं भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मान मन्विच्छेत्। यथाजात रूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहस्तत्तद्ब्रह्ममार्गे सम्यक्संपन्नः— इत्यादि।"‡

इसमें संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु आदि को यथाजात-रूपधर निर्ग्रन्थ लिखा है अर्थात् इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों के समान आचरण किया था।

'परमहंसोपनिषद्' में निम्न प्रकार उल्लेख है :—

"एवमस्तं ज्ञात्वा स परमहंस आशाम्बरो न नमस्कारो न स्वाहाकारो न निन्दा न स्तुतिर्यादृच्छिको भवेत्स भिक्षुः+।"

सचमुच दिगम्बर (परमहंस) भिक्षु को अपनी प्रशंसा-निन्दा अथवा आदर-अनादर से सरोकार हो क्या! आगे 'नारदपरिव्राजकोपनिषद्' में भी देखिये :—

"यथाविधिश्चेज्जातरूपधरो भूत्वा ·········जातरूप धरश्चरेदात्मानमन्विच्छेद्यथा जातरूपधरो निर्द्वन्द्वो निष्परि-

‡ ईशाद्य०, पृष्ठ २६१
+ ईशाद्य०, पृ० १६०

है। अतः इससे भी स्पष्ट है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बरमुनि का द्योतक है ÷।

चीनी यात्री हुानसांगके वर्णनसे भी यही प्रगट होता है कि 'निर्ग्रन्थ' का भाव नग्न अर्थात् दिगम्बर मुनि है :—

"The Li-hi (Nirgranthas) distinguish themselves by leaving their bodies naked and pulling out their hair." (St. Julien, Vienna, p. 224)

अतः इन सब प्रमाणोंसे यह स्पष्ट है कि 'निग्रन्थ' शब्द का ठीक भाव दिगम्बर (नग्न) मुनिका है।

१९. निरागार—आगार घर आदि परिग्रह रहित दिगंबर मुनि। 'परिग्गहरहिओ निरायारो' †।

२०. पाणिपात्र—करपात्र ही जिनका भोजनपात्र है, वह दिगम्बर मुनि।

'णिब्बेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परम जिणवरिंदेहिं।'

२१. भिक्षुक—भिक्षावृत्तिका धारक होनेके कारण दिगम्बर मुनि इस नामसे प्रसिद्ध होता है। इसका उल्लेख 'मूलाचार' में मिलता है :—

÷ The Gwalior inscrips: of Vik.S.1161 (1104 A.D.) "It was composed by a Jaina Yasodeva, who was an adherent of the Digambara or nude sect (Nigranthanatha)."—Catalogue of Archaeological Exhibits in the U. P. P. Museum Lucknow. Pt. I (1915) P. 44

† अष्ट०, पृ० ७७

शून्यागारदेवगृहतृणकूटवल्मीकवृक्षमूलकुलालशालाग्निहोत्र-शालानदीपुलिनगिरिकन्दरकुहरकोटरनिर्झरस्थण्डिले तत्र ब्रह्ममार्गे सम्यक्सम्पन्नाः शुद्धमानसाः परमहंसाचरणेन संन्यासेन देहत्यागं कुर्वन्ति ते परमहंसा नामेत्युपनिषत् × ।"

"तुरीयातीतोपनिषत्" में उल्लेख इस प्रकार है :—

"संन्यस्य दिगम्बरा भूत्वा विवर्णजीर्णवल्कलाजिन-परिग्रहमपि संत्यज्य तदूर्ध्वममन्त्रवदाचरन्क्षौराभ्यङ्गस्नानोर्ध्व-पुण्ड्रादिकं विहाय लौकिक वैदिक मप्युपसंहृत्य सर्वत्र पुण्या-पुण्यवर्जितो ज्ञानाज्ञानमपि विहाय शीतोष्ण सुखदुःख मा-नावमानं निर्जित्य वासनात्रयपूर्वकं निन्दानिन्दागर्वमत्सर दम्भ दर्प द्वेष काम क्रोध लोभ मोह हर्षामर्षासूयात्म संरक्षणादिकं दग्ध्वा ·········इत्यादि + ।"

'सन्यासोपनिषत्' में भी इसी उल्लेख इस प्रकार है:—

"वैराग्य संन्यासी ज्ञान संन्यासी ज्ञान वैराग्य संन्यासी कर्मसंन्यासीति चातुर्विध्यमुपागतः। तद्यथेति दृष्टानुश्रविक-विषय वैतृष्ण्यमेत्य प्राक्पुण्यकर्मविशेषात्संन्यस्तः स वैराग्य-संन्यासी ।··· ····क्रमेण सर्वमभ्यस्य सर्वमनुभूय ज्ञान-वैराग्याभ्यां स्वरूपानुसंधानेन देहमात्रावशिष्टः संन्यस्य जात रूपधरो भवति स ज्ञान वैराग्य संन्यासी ।" †

'परमहंसपरिव्राजकोपनिषत्' में भी दिगम्बर मुनियों का उल्लेख है :—

× ईशाद्य०, [illegible] २६८ । + ईशाद्य०, पृष्ठ ४१० † ईशाद्य० पृ० ४१२

दिगम्बर साधु बताया है । "याज्ञवल्क्योपनिषद्" में इनके अतिरिक्त दुर्वासा, ऋभु, निदाघ को भी तुरियातीत परमहंस बताया है ×। इस प्रकार उपनिषदों के अनुसार दिगम्बर साधुओं का होना सिद्ध है।

किन्तु यह बात नहीं है कि मात्र उपनिषदों में ही दिगम्बरत्व का विधान हो, बल्कि वेदोंमें भी साधु की नग्नता का साधारण सा उल्लेख मिलता है। देखिये 'यजुर्वेद' अ० १९ मंत्र १४ में है ७ :—

"आतिथ्यरूपं मासरम् महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्री सुरासुता ॥"

अर्थ—(आतिथ्यरूप) अतिथि के भाव (मासरं) महीनों तक रहने वाले (महावीरस्य) पराक्रमशील व्यक्ति के (नग्नहुः) नग्नरूप की उपासना करो जिससे (एतत्) ये (तिस्रो) तीनों (रात्री) मिथ्या ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूपी (सुरा) मद (असुता) नष्ट होती है।

इस मन्त्र का देवता अतिथि है। इसलिये यह मन्त्र अतिथियों के सम्बन्ध में ही लग सकता है, क्योंकि वैदिक देवता का मतलब वाच्य है- जैसाकि निरुक्तकार का भाव है—

× IHQ III, ४७१-४६०

७ मालूम होता है कि इस मंत्र द्वारा वेदकारने जैन तीर्थंकर महावीर के आदर्श को ग्रहण किया है। दूसरे धर्मों के आदर्शों को इस तरह ग्रहण करने के उदाहरण मिलते हैं। —IHQ. III 472-486

"यातेखोऽस्यते सा देवता: ।" इसके अतिरिक्त 'अथर्ववेद' के पन्द्रहवें अध्याय में जिन व्रात्य और महाव्रात्य का उल्लेख है; उनमें महाव्रात्य दिगम्बर साधु का द्योतक है। किन्तु यह व्रात्य एक वेदबाह्यसंप्रदाय था, जो बहुत कुछ निर्ग्रन्थ-संप्रदाय से मिलता-जुलता था। बल्कि यूं कहना चाहिये कि वह जैन-मुनि और जैन तीर्थंकर ही का द्योतक है।* इस अवस्था में यह मान्यता और भी पुष्ट होती है कि जैनतीर्थंकर ऋषभदेव द्वारा दिगम्बरत्व का प्रतिपादन सर्वप्रथम हुआ था और जब उसका प्रभाव बढ़ गया और लोगों को समझ पड़ गया कि परलोकोपयोग साधन के लिए दिगम्बरत्व आवश्यक है तो उन्होंने उसे अपने आश्रमों में भी स्थान दे दिया। यही कारण है कि वेद में भी इसका उल्लेख सम्मान रूपमें मिल जाता है।

अब हिन्दू पुराणादि ग्रंथों में जो दिगम्बर साधुओं का वर्णन मिलता है, यह भी देख लेना उचित है। श्री भागवत पुराण में ऋषभ अवतार के सम्बन्ध में कहा है :—

"बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितु कामो वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तन्वावततार ।"

अर्थ—"हे राजन्! परीक्षित उस यज्ञ में परम ऋषियों करके प्रसन्न हुआ नाभिके प्रिय करने की इच्छा से उसके अन्तः-

* देखो भग० महावीर पृ० १९-६६ ।

पुत्र में मरुदेवी में धर्म दिखायवे की कामना करके दिगम्बर रहिवेवारे तपस्वी ज्ञानी नैष्ठिक ब्रह्मचारी ऊर्ध्व रेता ऋषियों को उपदेश देने को शुक्लवर्ण की देह धार श्री ऋषभदेव नाम का (विष्णु ने) अवतार लिया।"†

"लिङ्ग पुराण" (अ० ४७ पृ० ६८) में भी नग्न साधु का उल्लेख है‡ :—

"सर्वात्मनात्मनि स्थाप्य परमात्मानमीश्वरं ।
नग्नो जटो निराहारोऽचीरी ध्वान्तगतोहि सः ॥२२॥"

"स्कंधपुराण-प्रभासखंड" में (अ० १६ पृ० २२१) शिवको दिगम्बर लिखा है+ :—

"वामनोपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम् ।
यादृग्रूपः शिवोदृष्टः सूर्यबिम्बे दिगम्बरः ॥९४॥"

श्री भर्तृहरि जी 'वैराग्यशतक' में कहते हैं× :—

'एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदाहंशंभो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ॥५८॥'

अर्थ—"हे शम्भो ! मैं अकेला, इच्छा रहित, शान्त, पाणिपात्र और दिगम्बर होकर कर्मों का नाश कब कर सकूंगा।" वह और भी कहते हैं— :—

अशीमहि वयं भिक्षामाशावासो वसीमहि ।
शयीमहि महीपृष्ठे कुर्वीमहि किमीश्वरैः ॥९०॥

---

† वेजै० पृ० ३।
‡ वेजै०, पृ० ६।
+ वेजै०, पृ० ३४।
× वेजै०, पृ० ८६।
+ वेजै०, पृ० ९०।

अर्थ—"अब हम भिक्षा ही करके भोजन करेंगे; दिशा ही के वस्त्र धारण करेंगे अर्थात् नग्न रहेंगे और भूमि पर ही शयन करेंगे। फिर भला वल्कलों से हमें क्या मतलब ?"

सातवीं शताब्दी में जब चीनी यात्री हुएनत्सांग भारत पहुँचा था उसने यहां हिन्दुओं के बहुसंख्य नंगे साधु देखे। वह लिखता है कि "महेश्वर भक्त साधु बालों का जूड़ा बांध कर जटा बनाते हैं तथा वस्त्र परित्याग करके दिगंबर रहते हैं और शरीर में भस्म का लेप करते हैं। ये बड़े तपस्वी हैं॥*" इन्हीं को परमहंस परिव्राजक कहना ठीक है। किन्तु हुएनत्सांग से बहुत पहिले ईस्वी पूर्व चौथी शताब्दि में जब सिकन्दर महान ने भारत पर आक्रमण किया था, तब भी नंगे हिन्दू साधु यहाँ मौजूद थे।

सिकन्दर का भतीजा सियूडो कल्लिस्थनेस (Pseudo Kallisthenes) सिकन्दर महान्‌के साथ यहां आया था और वह बताता है कि "ब्राह्मणों का श्रमणों की तरह कोई संघ नहीं।..............उनके साधु प्रकृति की अवस्था में (State of nature)—जल ही किनारे रहते हैं और नंगे ही घूमते हैं (Go about naked) उनके पास न चौपाये हैं, न हल [illegible] न लोहा तलवार हैं, न घर है, न आग है, न रोटी है, न सुरा है—यहां तक कि उन के पास श्रम और आनन्द का कोई सामान नहीं है। [illegible] साधुओं की स्त्रियां गङ्गा की दूसरी ओर

* हुएन०, पृ० १४०

रहती हैं, जिनके पास लुगाई और धनसम्पत्ति न होते हैं। वे जंगल में रहकर वे फलफल खाते हैं।"

सन् ८५१ में अरब देश से सुलेमान सौदागर भारत आया था। उसने यहां एक ऐसे नंगे हिन्दू योगी को देखा था जो सोलह वर्ष तक एक आसन से स्थित था ‡।

बादशाह औरङ्गजेब के जमाने में फ्रांस से आये हुये डॉ० बर्नियर ने भी हिन्दुओं के परमहंस (नंगे) सन्यासियोंको देखा था। वह इन्हें 'जोगी' कहता है और इनके विषय में लिखता है+ :—

"I allude particularly to the people called '*Jougis*', a name which signifies 'united to God' Numbers are seen, day and night, seated or lying on ashes, entirely naked, frequently under the large trees near talabs or tanks of water, or in the galleries round the *Deuras* or idol temples, Some have hair hanging down to the calf of the leg, twisted and entangled into knots, like the coat of our shaggy dogs. I have seen several who hold one & some who hold both arms, perpetually lifted up above the head; the nails of

† AI., P. 181.
‡ Elliot., I, P-4
+ Bernier., P. 316

their hands being twisted, and longer than half my little finger, with which I measured them. Their arms are as small & thin as the arms of persons who die in a decline, because in so forced & unnatural a position they receive not sufficient nourishment; nor can they be lowered so as to supply the mouth with food, the muscles having become contracted and the articulations dry & stiff. Novices wait upon these fanatics & pay them the utmost respect, as persons endowed with extraordinary sanctity. No *Fury* in the infernal regions can be conceived more horrible than the *Jougies* with their naked and black skin, long hair, spindle arms, long twisted nails and fixed in the posture which I have mentioned."

भाव यही है कि बहुत से ऐसे जोगी थे जो तालाब अथवा मंदिरों में बैठे रात-दिन रहते थे। उनके पास जमी न थे। उनमें से कोई अपनी बाहें ऊपर को उठाये रहते थे। नाखून उनके मुड़कर दूसर हो गये थे जो मेरी छोटी अंगुली के आधे बराबर थे। सूखकर वे लकड़ी हो गये थे। उन्हें सिकुड़ना भी मुश्किल था; क्योंकि उनकी नसें तन गईं थीं। सब जन इन साधों की सेवा करते हैं और इनकी बड़ी विनय

करते हैं। वे इन लंगोटियों के अतिरिक्त किसी दूसरे को समझते नहीं और इनके क्रोध से भी बेहद डरते हैं। इन संन्यासियों की नंगी और काली चमड़ी है, लम्बे बाल हैं, सूखी बाहें हैं, लम्बे मुड़े हुए नाखून हैं और वे एक जगह पर ही उस आसन में जमे रहते हैं जिसका मैंने उल्लेख किया है। यह हठयोग की पराकाष्ठा है। परमहंस होकर यह हठ न करते तो करते भी क्या?

सन् १६२३ ई० में पिटर डेला वॉलेला नामक एक यात्री आया था। उसने अहमदाबाद में साबरमती नदी के किनारे और शिवालों में अनेक नग्न साधु देखे थे; जिन की लोग बड़ी विनय करते थे *।

आज भी प्रयाग में कुम्भ के मेले के अवसर पर हजारों नागा सन्यासी वहाँ देखने को मिलते हैं—वे कतार बाँध कर सरह-आम नंगे निकलते हैं।

इस प्रकार हिन्दू शास्त्रों और यात्रियों की साक्षियों से हिन्दू धर्म में दिगम्बरत्व का महत्व स्पष्ट हो जाता है। दिगम्बर साधु हिन्दुओं के लिये भी पूज्य-पुरुष हैं।

---

* पुरातत्व, वर्ष २ अङ्क ३ पृ० ४४०

[५]

इस्लाम और दिगम्बरत्व ।

"I am no apostle of new doctrines", said Muhammad, "neither know I what will be done with me or you." —Koran XLVI.

पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद ने खुद फ़रमाया है कि "मैं किन्हीं नये सिद्धान्तोंका उपदेशक नहीं हूँ और मुझे यह नहीं मालूम कि मेरे या तुम्हारे साथ क्या होगा?" । सत्य का उपासक और यह ही क्या कह सकता है ! उसे तो सत्य को गुमराह भाइयों तक पहुँचाना है और उससे जैसे बनता है वैसे उस कार्य को करना पड़ता है। मुहम्मद सा० को अरब के असभ्य लोगों में सत्य का प्रकाश फैलाना था। वह लोग ऐसे पात्र न थे कि एकदम ऊँचे दर्जे का सिद्धान्त उन को सिखाया जाता। इस पर भी हज़रत मुहम्मद ने उनको स्पष्ट शिक्षा दी कि —

"The love of the world is the root of all evil."

"The world is as a prison and as a famine to Muslims; and when they leave it you may say they leave famine and a prison."—(Sayings of Mohammad)*.

---

* KK., P. 733.

अर्थात्—"संसार का प्रेम ही सारे पाप की जड़ है। संसार मुसलमानके लिए एक कैदखाना और कफ़न के समान है और जब वे इसको छोड़ देते हैं तब तुम कह सकते हो कि उन्होंने कफ़न और कैद खाने को छोड़ दिया।" त्याग और वैराग्य का इससे बढ़िया उपदेश और हो भी क्या सकता है? हज़रत मुहम्मद ने स्वयं उसके अनुसार अपना जीवन बनाने का यथासंभव प्रयत्न किया था। उस पर भी उनके कम से कम वस्त्रों का परिधान और हाथ की अंगूठी उनकी भावनामें बाधक हुई होंगी। किन्तु यह उनके लिये इस्लाम के उस आरम्भ कालमें संभव नहीं था कि वह पूर्ण रूप होकर त्याग और वैराग्य—तर्के दुनियां—का श्रेष्ठतम उदाहरण उपस्थित करते! यह कार्य उनके बाद हुये इस्लामके सूफ़ी तत्ववेत्ताओं के भाग में आया। उन्होंने 'तर्क' अथवा त्यागधर्म का उपदेश स्पष्ट शब्दों में यूं दिया:—

"To abandon the world, its comforts and dress,—all things now and to come,—conformably with the Hadees of the Prophet."†

अर्थात्—"दुनियां का सम्बन्ध त्याग देना—तर्क कर देना—उसकी आसाइशों और पोशाक—सबही चीज़ोंको अब की और आगे की—पैगम्बर सा० की हदीस के मुताबिक।"

---

* Religious Attitude & Life in Islam, P. 298 & KK. 709

† The Dervishes—KK. P. 738

इन का उर्दू में अनुवाद 'इस्लामे मन्जूम' नामक पुस्तक में इस प्रकार किया हुआ है —

१—मस्त चोला, मस्तनश, कर काम जा—होगा क्या नङ्गे से तू अकड़ं कर आ !

२—है मगर चोंची पै जामें पोश की—है नङ्गलो ज़ेवर अरियाँ तनी !!

३—या किन्हीं से दो बहन् धाऊँ—या हो बन की तरह बेजामें शम्मी !

४—मुतलक़न अरियाँ जो हो सकता नहीं—कपड़े कम यह है कि औसत के करीं !!

भाव स्पष्ट है। कोई तार्किक मस्त नङ्गे दरवेश से आ उलझा। उसने सीधेसे कह दिया कि जा अपना काम कर—तू नङ्गे के सामने टिक नहीं सकता। वस्त्र धारी को हमेशा धोबी की फिकर लगी रहती है; किन्तु नंगे तन की शोभा दैवी प्रकाश है। बस, या तो तू नङ्गे दरवेशों से कोई सरोकार न रख अथवा उन की तरह आज़ाद और नङ्गा हो जा ! और अगर तू एक दम सारे कपड़े नहीं उतार सकता तो कम से कम कपड़े पहन और मध्यमार्ग को ग्रहण कर ! क्या अच्छा उपदेश है। एक दिगम्बर जैन साधु भी तो यही उपदेश देता है ! इस से दिगम्बरत्व का इस्लाम से सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है।

और इस्लाम के इस उपदेश के अनुरूप सैकड़ों मुसल-

नाम फ़कीरों ने दिगम्बर वेशको भारतवर्षमें धारण किया था। उनमें अबुलक़ासिम गिलानी * और सरमद शहीद उल्लेखनीय हैं।

सरमद शाहजहाँऔरङ्गज़ेब के समय में दिल्ली में हो गुज़रा है और उस के हज़ारों बड़े शिष्य भारत भर में बिखरे पड़े थे। वह मूल में काशान (आरमेनिया) का रहने वाला एक ईसाई व्यापारी था। फ़ारसी और अरबी का भी वह विद्वान् था। अरबी अच्छी तरह जानता था। व्यापार के निमित्त भारत में आया था। ठट्ठा (सिंध) में एक हिन्दू लड़के के इश्क़ में पड़ कर मजनूँ बन गया। तदनन्तर इस्लाम के सूफ़ी दरवेशों की संगति में पड़ कर मुसलमान हो गया। नंगा वह शहरों और गलियोंमें फिरता था। अध्यात्मवाद का उपासक था। घूमता-घामता वह दिल्ली आ गया। शाहजहाँ का वह अन्त समय था। दारा शिकोह, शाहजहाँ बादशाह का बड़ा लड़का, उस का भक्त होगया। सरमद आनन्द से अपने मत का प्रचार दिल्ली में करता रहा। उस समय फ़्रान्स से आये हुए डॉ० बरनियर ने खुद अपनी आँखों से उसे नंगा दिल्ली की गलियों में घूमते देखा था‡। किन्तु जब शाहजहाँ और दारा को मार कर औरंगज़ेब बादशाह हुआ तो सरमद

---

* KK., P [illegible] and NJ, PP 8–9.

† JG., XX PP. 156–159

‡ Bernier remarks "I was for a long time disgusted with a celebrated *Fakire* named *Sarmet*, who

को बादशाही में भी आइना पढ़ गया। एक मुल्ला ने उस को नग्नता के अपराध में उसे फांसी पर चढ़ाने की सलाह औरङ्गज़ेब को दी, किन्तु औरङ्गज़ेब ने नग्नता को इस दण्ड की वस्तु न समझा × और सरमद से कपड़े पहनने की दरख्वास्त की। इस के उत्तर में सरमद ने कहा —

"औंकस कि तुरा कुलाह सुल्तानी दाद,
मारा हम ओ अस्बाब परेशानी दाद।
पोशानीद लबास हरकरा ऐबे दीद,
बे ऐबा रा लबास उरयानी दाद।"

यानी "जिस ने तुम को बादशाही ताज दिया, उसी ने हम को परेशानी का सामान दिया। जिस किसी में कोई ऐब पाया, उस को लिबास पहनाया और जिन में ऐब न पाये उन को नङ्गेपन का लिबास दिया।"*

बादशाह इस रुबाई को सुनकर चुप हो गया; लेकिन सरमद उसके क्रोध से बच न पाया। अब के सरमद फिर अपराधी बनाकर लाया गया। अपराध सिर्फ़ यह था कि वह 'कलमा' आधा पढ़ता है जिस के माने होते हैं कि 'कोई खुदा नहीं है।' इस अपराध का दण्ड उसे फांसी मिली और

---

paraded the streets of Delhi as naked as when he came into the world etc."—(Berniers Travels in the Mogul Empire, P 317)

× Emperor told the Ulema that "Mere nudity cannot be a reason of execution" —JG. XX, P. 158.

* वैराग्य, पृष्ठ [illegible]

[६]

ईसाई मज़हब और दिगम्बर साधु !

"And he stripped his clothes also, and prophesied before Samuel in like manner, and lay down naked all that day and all that night. Wherefore they said, is Saul also among the Prophets ?" —(Samuel XIX.-24)

"At the same time spake the Lord, by Isaiah the son of Amos, saying, 'Go and loose the sack-cloth from off thy loins, and put off thy shoe from thy foot. And he did so, walking naked and bare foot."

—(Isaiah XX. 2)

ईसाई मज़हब में भी दिगम्बरत्व का महत्व भुलाया नहीं गया है; बल्कि बड़े आदर के शब्दों में उसका यथा प्रतिपादन हुआ मिलता है। इसका एक कारण है। जिस महानुभाव द्वारा ईसाई धर्म का प्रतिपादन हुआ था वह जैन श्रमणों के निकट शिक्षा पा चुका था†। उसने जैनधर्म की शिक्षा को ही अलंकृत-भाषा में पाश्चात्य-देशों में प्रचलित कर दिया। इस अवस्था में ईसाई मज़हब दिगम्बरत्व के

† विश्वको०, भा० १ पृष्ठ १२८

.........They were all prophets (Saints) and they had nothing with them and were naked.[1]

अर्थात्—वह जो मुक्ति की प्राप्ति में श्रद्धा रखते थे एकान्त में पर्वत पर आ जमे.........वे सब सन्त थे और उनके पास कुछ नहीं था और वे नंगे थे।

अपोसल पीटर ने नंगे रहने की आवश्यकता और विशेषता को निम्न शब्दों में बड़े अच्छे ढंग पर "Clementine Homilies" में दर्शा दिया है :—

"For we, who have chosen the future things, in so far as we possess more goods than these, whether they be clothings, or.........any other thing, possess sins, because *we ought not to have anything.... ....To all of us possessions are sins..........The deprivation of these, in whatever way it may take place is the removal of sins.*"*

अर्थात्—क्योंकि हम जिन्होंने भविष्य की चीज़ों को चुन लिया है, वहाँ तक कि हम उससे ज़्यादा सामान रखते हैं चाहे वे फिर कपड़े लत्ते हों या दूसरी कोई चीज़, पाप को रखते हुये हैं, क्योंकि हमें कुछ भी अपने पास नहीं रखना चाहिये। हम सब के लिये परिग्रह पाप है।

---

१ NJ, P 6

* Ante Nicene Christian Library, XVII. 240 & NJ., P. 7

जैसे भी हो वैसे इन का त्याग करना कर्मों को हटाना है।

दिगम्बरत्व की आवश्यकता भाव से मुक्ति पाने के लिये आवश्यक ही है। ईसाई धर्मग्रन्थ ने इसके महत्व को खूब दर्शा दिया है। यही वजह है कि ईसाई मज़हब के मानने वालों में सैकड़ों दिगम्बर साधु हो गुज़रे हैं।

[७]

दिगम्बर जैन मुनि !

"जधजादरूवजादं उप्पाडिद केसमंसुगं सुद्धं।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं ॥५॥
मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवजोग जोग सुद्धीहिं।
[illegible] ण परावेक्खं अपुणब्भव कारणं जो एहं ॥६॥"

—प्रवचन सार।

दिगम्बर जैन मुनि के लिये जैन शास्त्रों में लिखा गया है कि उनका लिंग अथवा भेष यथाजातरूप नग्नहो—सिर और दाढ़ीके [illegible] उन्हें नहीं रखने होंगे—वे इन स्थानोंके बालों को हाथ से उखाड़ कर फेंक देते हैं—यह उनका केश-लुञ्चन किया है। इसके अतिरिक्त दिगम्बर जैन मुनि का भेष शुद्ध, हिंसादि रहित, शृंगार रहित, ममता-आरम्भ रहित, उपयोग और योग की शुद्धि सहित, पर द्रव्य की अपेक्षा

रहित, मोक्ष का कारण होता है। सारांश रूप में दिगम्बर जैन मुनि का भेष यह है; किन्तु यह इतना दुर्द्धर और गहन है कि संसार प्रपंच में फंसे हुए मनुष्य के लिये यह संभव नहीं है कि वह एक दम इस भेष को धारण कर ले! तो फिर क्या यह भेष अव्यवहार्य है! जैनाचार्य कहते हैं, 'कदापि नहीं!' और यह है भी ठीक क्योंकि उसमें दिगम्बरत्व को धारण करने के लिये मनुष्य को पहले से ही एक वैज्ञानिक ढंग पर तैयार करके योग्य बना लिया जाता है और दिगम्बर पद में भी उसे अपने मूल उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक वैज्ञानिक ढंग पर ही जीवन व्यतीत करना होता है। जैनेतर शास्त्रों में यद्यपि दिगम्बर भेष का प्रतिपादन हुआ मिलता है, किन्तु उनमें जैनधर्म जैसे वैज्ञानिक नियम-प्रवाह की कमी है। और यही कारण है कि परमहंस मार्गस्थ भी उनमें सपत्नीक मिल जाते हैं। † जैनधर्म के दिगम्बर साधुओं के लिये ऐसी बातें बिल्कुल असंभव हैं!

अच्छा तो, दिगम्बर भेष धारण करने के पहले जैनधर्म मुमुक्षु के लिए किन नियमों का पालन करना आवश्यक बतलाता है? जैन शास्त्रों में सचमुच इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि एक गृहस्थ एक दम सर्वसंग छोड़कर दिगम्बरत्व के उन्नत शैल पर नहीं पहुँच सकता। उसको वहां तक पहुँचने के लिये क़दम-ब-क़दम आगे बढ़ना होगा। इसी

† यूनानी लेखकों ने इसका उल्लेख किया है। देखो, AI. p. 181

के 'क्षुल्लक श्रावक' इसके समतुल्य होते हैं, किन्तु यही पद साधु का श्रेष्ठ रूप है*। इसके विपरीत जैनधर्म में इसके आगे मुनिपद और है। मुनिपद में पहुँचने के लिये ऐलक श्रावक को लाज़मी तौर पर दिगम्बर-वेष धारण करना होता है और मुनिधर्म का पालन करने के लिये मूल और उत्तर गुणों का पालन करना होता है। मुनियों के मूल गुण जैन शास्त्रों में इस प्रकार बताए गए हैं :—

'पंचय महव्वयाइं समिदीओ पंच जिणवरुद्दिट्ठा ।
पंचेविंदियरोहा छप्पि य आवासया लोचो ॥२॥
अच्चेलकमण्हाणं खिदिसयणमदंतघंसणं चेव ।
ठिदिभोयणेयभत्तं मूल गुणा अट्ठवीसा दु ॥३॥ मूलाचार ॥

अर्थात्—"पांच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह), जिनवर कर उपदेशी हुईं पांच समितियां (ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणा समिति, आदाननिक्षेपण समिति, मूत्रविष्ठादिक का शुद्ध भूमिमें क्षेपण अर्थात् प्रतिष्ठापनासमिति), पांच इन्द्रियों का निरोध (चक्षु, कान, नाक, जीभ, स्पर्शन—इन पांच इन्द्रियों के विषयों का निरोध करना), छह आवश्यक (सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग), लोच, आचेलक्य, अस्नान, पृथिवीशयन, अदंतघर्षण, स्थितिभोजन, एक भक्त—ये जैन साधुओं के अट्ठाइस मूल गुण हैं।"

* वीर वर्ष ८ पृ० २८१-२८२

रहित, शुद्ध, दूर, बिल रहित, चौड़े, लोकनिन्दा व विरोध-रहित स्थान में मल-मूत्र क्षेपण करना;

(११) चक्षुनिरोध व्रत—सुन्दर व असुन्दर दर्शनीय वस्तुओं में राग द्वेषादि तथा आसक्ति का त्याग;

(१२) कर्णेन्द्रिय निरोध व्रत—षड्ज आदि स्वर रूप जीव शब्द (गान) और वीणा आदिसे उत्पन्न अजीवशब्द रागादि के निमित्त कारण हैं; अतः इनका न सुनना;

(१३) घ्राणेन्द्रिय निरोध व्रत—सुगन्धि और दुर्गन्धि में राग-द्वेष नहीं करना;

(१४) रसनेन्द्रिय निरोध व्रत—जिह्वालम्पटता के त्याग सहित और आकांक्षा रहित परिणाम पूर्वक दातार के यहाँ मिले भोजन को ग्रहण करना;

(१५) स्पर्शनेन्द्रिय निरोध व्रत—कठोर, नरम आदि आठ प्रकार का दुःख अथवा सुख रूप जो स्पर्श उस में हर्ष विषाद न रखना;

(१६) सामायिक—जीवन-मरण, संयोग-वियोग, मित्र-शत्रु, सुख-दुःख, भूख-प्यास आदि बाधाओं में राग द्वेष रहित समभाव रखना;

(१७) चतुर्विंशति-स्तव—ऋषभादि चौबीस तीर्थंकरों की मन-वचन-काय की शुद्धता-पूर्वक स्तुति करना;

(१८) वन्दना—अर्हन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु और जिन शास्त्रको

मन-वचन-काय की शुद्धि सहित किया मस्तक नमाके नमस्कार करना।

(१९) प्रतिक्रमण—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव रूप किये गये दोष को शोधना और अपने पाप प्रगट करना।

(२०) प्रत्याख्यान—नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव—इन छहों में शुभ मन, वचन, काय से आगामी काल के लिए अयोग्य का त्याग करना।

(२१) कायोत्सर्ग—नियत किया रूप एक नियत काल के लिये जिन गुणों की भावना सहित देह में ममत्व को छोड़ कर स्थित होना।

(२२) केशलोंच—दो, तीन या चार महीने बाद प्रतिक्रमण व उपवास सहित दिनमें अपने हाथसे मस्तक, दाढ़ी, मूंछ के बालों का उखाड़ना,

(२३) अचेलकत्व—वस्त्र, चर्म, टाट, तृण आदि से शरीर को नहीं ढंकना, और आभूषणों से भूषित न होना।

(२४) अस्नान—स्नान-उबटन-अंजन-लेपन आदि का त्याग।

(२५) क्षितिशयन—जीव बाधा रहित शुद्ध प्रदेश में दण्ड अथवा धनुष के समान एक करवट से सोना,

(२६) अदन्तधावन—अंगुली, नख, दांतौन, तृण आदि से दन्त मल को शुद्ध नहीं करना,

(२७) स्थितिभोजन—अपने हाथों को भोजन पात्र बना कर भीत आदि के आश्रय रहित चार अंगुल के अन्तर से

समपाद खड़े रहकर तीन मुहूर्तों की मुद्दतमें आहार ग्रहण करना; और

(२८) एक भक्त—सूर्य के उदय और अस्तकाल की तीन घड़ी समय छोड़कर एक बार भोजन करना।

इस प्रकार एक मुमुक्षु दिगम्बर मुनि के अंतरंग को तब ही प्राप्त कर सकता है जब वह उपरोक्त अट्ठाईस मूल गुणों का पालन करने लगे। इनके अतिरिक्त जैन मुनिके लिये और भी उत्तर गुणों का पालन करना आवश्यक है; किन्तु ये अट्ठाईस मूल गुण ही ऐसे व्यवस्थित नियम हैं कि मुमुक्षु को निर्विकारी और योगी बना दें! और यही कारण है कि आज तक दिगम्बर जैन मुनि अपने पुरातन वेष में देखने को नसीब हो रहे हैं। यदि यह वैज्ञानिक नियम प्रवाह जैनधर्म में न होता तो अन्य मतावलम्बियों के नग्न साधुओं के सदृश आज दिगम्बर जैन साधुओं के भी दर्शन होना दुर्लभ हो जाते। दिगम्बर साधु—सच्चे जैन साधुके लिये 'दिगम्बर साधु' पदका प्रयोग करना ही हम उचित समझते हैं—के उपरोक्त प्रारम्भिक गुणों को देखते हुये—जिन के बिना वह मुनि ही नहीं हो सकता—दिगम्बर मुनि के जीवन के आत्मसंयम, इन्द्रियनिग्रह, संयम, धर्मभाव, परोपकारवृत्ति, निस्पृहता इत्यादि का सहज ही पता चल जाता है। इस दशा में यदि वे जगद्वन्द्य हों तो आश्चर्य क्या!

दिगम्बर मुनियों के सम्बन्ध में यह जान लेना भी

सकते हैं कि उन के (१) आचार्य (२) उपाध्याय और (३) साधुरूप तीन भेदोंके अनुसार कर्त्तव्य में भी भेद है। आचार्य साधु के गुणों के अतिरिक्त दीक्षा संबन्धी आचारको आप स्वयं पालन करते और दूसरों से कराते हैं, धर्म का उपदेश देकर मुमुक्षुओं का संग्रह करें और उनकी सार-संभाल रक्खे। उपाध्याय का कार्य साधुओं के योग्य सब शास्त्रों का पठन पाठन करता है; और जो मात्र अपने मूल गुणों को पालता हुआ ध्यान-ध्यान में लीन रहता है, वह साधु है। इस प्रकार दिगम्बर मुनियों का अपने कर्त्तव्य के अनुसार जीवन-यापन करना पड़ता है। आचार्य महाराज का जीवन संघ के संयोग में ही व्यतीत होता है; इस कारण कभी कोई आचार्य विशेष ध्यान ध्यान करने की नियत से अपने स्थान पर किसी योग्य शिष्य को नियुक्त करके स्वयं साधुपद में आ जाते हैं! मुनि-दशा ही साक्षात् मोक्ष का कारण है।

[८]

दिगम्बर-मुनि के पर्यायवाची नाम।

दिगम्बर मुनिके लिये जैनशास्त्रों में अनेक शब्द व्यवहृत हुये मिलते हैं। जैनेतर साहित्य में भी [illegible] वह भी अधिक नामों से उल्लिखित हुये हैं। संक्षेप में उन का साधारण सा उल्लेख कर देना उचित है; जिससे किसी

प्रकार की शङ्का को स्थान न रहे। साधारणतः दिगम्बर मुनि के लिये व्यवहृत शब्द निम्नप्रकार देखने को मिलते हैं :—

अचेलक, अकिंचन, अचेलव्रत (अचेलव्रती), अतिथि, अनगारी, अपरिग्रही, अहीक, आर्य, ऋषि, गणी, गुरु, जिन-लिङ्गी, तपस्वी, दिगम्बर, दिग्वासस, नग्न, निश्चेल, निर्ग्रन्थ, निरागार, पाणिपात्र, भिक्षुक, महाव्रती, माहण, मुनि, यति, योगी, वातवसन, विवसन, संयमी (संयत), स्थविर, साधु, सन्न्यस्त, श्रमण, क्षपणक।

संक्षेप में इनका विवरण इस प्रकार है :—

१. अचेलक +—लंगोटी रहित जैन मुनि,

२. अकिंचन ×—जिसके पास किञ्चित् मात्र (जरा भी) परिग्रह न हो वह जैन मुनि;

३. अचेलव्रत या अचेलव्रती—चेल अर्थात् वस्त्ररहित व्रत। इस शब्द का व्यवहार जैन और जैनेतर साहित्य में हुआ मिलता है। 'मूलाचार' ÷ में कहा है :—

"अच्चेलक्कं लोचो वोसट्टसरीरदा य पडिलिहणं।
एसो हु लिंगकप्पो चदुव्विधो होदि णादव्वो ॥९०८॥"

अर्थ—'आचेलक्य अर्थात् कपड़े आदि सब परिग्रह का त्याग, केश लोंच, शरीर संस्कार का अभाव, और पीछी—यह चार प्रकार लिङ्गभेद जानना।'

+ इन्डै०, पृ० १ × (Ibid.) ÷ पृष्ठ ३९६

"विरयमिदो वहियसं मोमंसित्ता विवेदयहि भरिएणु।" †

११. गुरु—शिष्यवर्ग—मुनि श्रावकादि के लिये धर्मगुरु होनेके कारण दिगम्बर मुनि इस नामसे भी अभिहित है। उल्लेख यूं मिलता है:—

"एवं आपुच्छित्ता सगवर गुरुणा विसज्जिओ संतो।" ‡

१२. जिनलिङ्गी +—जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट नग्न भेष का धारण करने के कारण दिगंबर मुनि इस नामसे भी प्रसिद्ध है।

१३. तपस्वी—विशेषकर तप में लीन होने के कारण दिगंबर मुनि तपस्वी कहलाते हैं। 'रत्नकरण्डक श्रावकाचार' में इसकी व्याख्या निम्नप्रकार की गई है:—

"विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञान ध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते ॥ १० ॥"*

१४. दिगम्बर—दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं इसलिये [illegible] मुनि दिगम्बर हैं। मुनि कनकामर अपने को जैन मुनि बता 'दिगम्बर' शब्द से ही प्रगट करते हैं:—

"वइरायइं हुवइ दियंवरेण।
सुपसिद्ध णाम कणयामरेण॥"†

हिन्दू पुराणादि ग्रन्थोंमें भी जैन मुनि [illegible] नामसे उल्लिखित हुए हैं ¶।

---

† मूला०, पृ० ८८ ‡ मूला०, पृ०, ६४ + भूजैस०, पृ० ४
* रत्ना०, पृष्ठ ८ † जैहि, वर्ष ११ पृष्ठ २०१
¶ विष्णु पुराण में है 'दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपत्रधरः' [१८-२] 'पद्म-

"मूलाचार" में भी अचेलक मूल गुण की व्याख्या करते हुये साधु को निर्ग्रंथ भी कहा है :—

"वत्थाजिणवक्केण व अहवा पत्ताइणा असंवरणं ।
णिब्भूसण णिग्गंथं अच्चेलक्कं जगदि पुज्जं ॥३०॥"*

'भद्रबाहु चरित्र' के निम्न श्लोक भी 'निर्ग्रंथ' शब्द का भाव दिगम्बर प्रकट करते हैं‡ :—

'निर्ग्रंथ मार्गमुत्सृज्य सग्रन्थत्वेन ये जडाः ।
व्याचक्षते शिवं नृणां तद्वचो न घटामटेत् ॥८४॥'

अर्थ—"जो मूर्ख लोग निर्ग्रन्थ मार्ग के बिना परिग्रह के सद्भाव में भी मनुष्यों को मोक्ष का प्राप्त होना बताते हैं उनका कहना प्रमाणभूत नहीं हो सकता।"

"अहो निर्ग्रंथता शून्यं किमिदं नौतनं मतम् ।
न मेऽत्र युज्यते गन्तुं पात्रदण्डादिमण्डितम् ॥१४७॥'

अर्थ—"अहो ! निर्ग्रंथता रहित यह वस्त्र पात्रादि सहित नवीन मत कौन है ? इन के पास मेरा जाना योग्य नहीं है।"

'स्वाकमवाग्नहाद्भवा गृहीतामर पूजिताम् ।
निर्ग्रन्थतां पुनो हित्वा सङ्गं मुदाऽखिलम् ॥१४८॥'

अर्थ—"भगवन् ! मेरे आग्रह से आप सब परिग्रह छोड़ कर पहले ग्रहण की हुई देवताओंसे पूजनीय तथा पवित्र निर्ग्रन्थ अवस्था ग्रहण कीजिये।" 'सङ्ग' शब्द का अर्थ अगले श्लोक में 'सङ्गं वसनादिकमञ्जसा।' किया है। अतः यह स्पष्ट

---

* मूला०, पृ० ११ ‡ भद्र० पृ० ७० व ८६

है कि निर्ग्रन्थ अवस्था वस्त्रादि रहित दिगम्बर है। किन्तु दुर्भाग्यसे जैनसमाजमें कुछ ऐसे लोग होगए हैं जिन्होंने शिथिलाचारके पोषणके लिए वस्त्रादि परिग्रहयुक्त अवस्थाको भी निर्ग्रन्थ मार्ग घोषित कर दिया है। आज उनका संप्रदाय 'श्वेताम्बर जैन' नामसे प्रसिद्ध है। यद्यपि उनके पुरातन ग्रन्थ दिगम्बर भेषको प्राचीन और श्रेष्ठ मानते हैं, किन्तु अपनेको प्राचीन संप्रदाय प्रगट करनेके लिये वह वस्त्रादि युक्तभी निर्ग्रन्थपना प्रतिपादित करते हैं। यह मान्यता युक्त नहीं है। इसलिये संक्षेपमें इस पर यहां विचार कर लेना समुचित है।

श्वेताम्बर शास्त्र इस बातको प्रकट करते हैं कि दिगंबर (नग्न) धर्म को भगवान् ऋषभदेवने पालन किया था—वह स्वयं दिगम्बर रहे थे* और दिगम्बर वेष इतर-भेषोंसे श्रेष्ठ है‡। तथापि भगवान् महावीरने निर्ग्रन्थ श्रमणके लिए दिग-

---

* 'कल्पसूत्र'—JS. pt. I p २८५।

‡ आचारांग सूत्र में कहा है :—

"Those are called naked, who in this world, never returning (to a worldly state), (follow) my religion according to the commandment. This *highest doctrine* has here been declared for men."—JS. I p 56

"अचेलगा धम्मित्ताणं विसुद्धविमलविसालकं।"

अर्थ—"वस्त्रादि परिग्रहयुक्त साधु से वस्त्र रहित जिनकल्पि साधु विशुद्ध है। (संवत् १९९० की मुद्रित आचारांगसूत्र भाग १ पृष्ठ ११)

अपने वृहत् साम्राज्यमें दिगम्बर मुनियोंके विहार और धर्म-प्रचार करनेकी सुविधाकी थी। श्रमणपति भद्रबाहुके संघको वह राजा बहुत विनय करताथा। भद्रबाहुजी बङ्गाल देशके कोटिकपुर नामक नगरके निवासीथे‡। एक दफा वहाँ श्रुतकेवली गोवर्द्धन स्वामी अन्य दिगम्बर मुनियों सहित आनिकले; भद्रबाहु उन्हींके निकट दीक्षित होकर दिगम्बर मुनि हो गये। गोवर्द्धन स्वामीने संघसहित गिरनारजी की यात्राका उद्योग कियाथा+। इस उल्लेखसे स्पष्ट है कि उनके समयमें दिगम्बर मुनियोंको विहार करनेकी सुविधा प्राप्त थी। भद्रबाहुजी ने भी संघसहित देश-देशान्तरमें विहार कियाथा और वह उज्जैनी पहुँचे थे। वहींसे उन्होंने दक्षिण देशकी ओर संघ सहित विहार कियाथा; क्योंकि उन्हें मालूम होगया था कि उत्तरापथ में एक द्वादशवर्षीय विकाल दुष्काल पड़नेको है जिसमें मुनिचर्याका पालन दुष्कर होगा×। सम्राट् चन्द्रगुप्तने भी इसी समय अपने पुत्रको राज्य देकर भद्रबाहु स्वामीके निकट जिनदीक्षा धारणकी थी और वह अन्य दिगम्बर मुनियोंके साथ

---

anas, *as* opposed to the doctrines of the Brahmanas. (Strabo, XV. i. 60)." —JRAS., Vol. IX pp. 175-176.

‡ "तमालपत्रवत्रस्य देशोऽभूत्पौण्ड्रवर्द्धनः।"—"वप्रकोट्टपुरं रम्यं श्रोतते नाकत्प्रख्यत।"

'भद्रबाहुरितिख्याति प्राप्तवान्बन्धुकोतः।" इत्यादि"—भद्र०, पृ० १०—२३।

+ "चिकीर्षुर्नेमितीर्थेशयात्रां रैवतकाचले।"—भद्र० पृ० १३।

× भद्र० पृ० १७—२१

"वृद्ध श्रावक निर्ग्रन्थाः इत्यादि"*

वृद्ध श्रावक शब्द क्षुल्लक-ऐलक का द्योतक है तथा निर्ग्रन्थ शब्द दिगम्बर मुनिका द्योतक है अर्थात् जैनधर्म के किसी भी गृहत्यागी साधुको श्राद्धकर्म के समय नहीं देखना चाहिये, क्योंकि संभव है कि वह उपदेश देकर उसकी निस्सारता प्रकट कर दें। अतः वैदिक साहित्यके उल्लेखोंसे भी निर्ग्रन्थ शब्द नग्न साधुके लिये प्रयुक्त हुआ सिद्ध होता है।

बौद्ध साहित्य भी इसही बातका पोषण करता है। उसमें 'निर्ग्रन्थ' शब्द साधुरूपमें सर्वत्र नग्नमुनिके भावमें प्रयुक्त हुआ मिलता है। भगवान महावीर को बौद्धसाहित्यमें उनके कुल अपेक्षा निर्ग्रन्थ नातपुत्त कहा है † और श्वेताम्बर जैन साहित्यसे भी यह प्रकट है कि निर्ग्रन्थ महावीर दिगम्बर रहे थे। बौद्ध शास्त्र भी उन्हें निर्ग्रन्थ और अचेलक ‡ प्रकट करते हैं। इससे स्पष्ट है कि बौद्धोंने 'निर्ग्रन्थ' और 'अचेलक' शब्दोंको एकही भाव (Sense) में प्रयुक्त किया है अर्थात् नग्न साधु के रूपमें। तथापि बौद्ध साहित्यके निम्न उद्धरणभी एक ही बातके द्योतक हैं:—

दीघनिकाय भाग (१) ७८-७९ में लिखा है कि+:—

"Pasendi, King of Kosal saluted Niganthas."

---

* वेवैजै०, पृष्ठ १३।

† मज्झिमनिकाय २।३५; संयुत्तनिकाय १।७३।

‡ जातक भाग १ [illegible] —मज्झि० २६४।

+ Indian Historical Quarterly, vol. 1, p. 153

है। अतः इससे भी स्पष्ट है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बर मुनि का द्योतक है *।

चीनी यात्री हुएनत्सांगके वर्णनसे भी यही प्रगट होता है कि 'निर्ग्रन्थ' का साधु नग्न अर्थात् दिगम्बर मुनि है :—

"The Lihi (Nirgranthas) distinguish themselves by leaving their bodies naked and pulling out their hair" (St. Julien Vienna, p. 224)

अतः इन सब प्रमाणोंसे यह स्पष्ट है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द का ठीक भाव दिगम्बर (नग्न) मुनिसे है।

१६. निरागार—आगार घर आदि परिग्रह रहित दिगंबर मुनि। 'परिग्गहरहिओ निरायारो' है।

२०. पाणिपात्र—हाथ ही जिनका भोजनपात्र है, वह दिगम्बर मुनि।

'णिच्चेल पाणिपत्तं उवइट्ठं परम जिणवरिंदेहिं।'

२१. भिक्षुक—भिक्षावृत्तिका पालन करनेके कारण दिगम्बर मुनि इस नामसे प्रसिद्ध होता है। इसका उल्लेख 'मूलाचार' में मिलता है :—

---

* The Grantha is a copy of V. S. 1[illegible] (1191 A.D.) "It was composed by a Jaina Yasodeva, who was an adherent of the Digambara or nude sect (Nirgranthanatha)."—Catalogue of Archaeological Exhibits in the U. P. P. Museum Lucknow, Pt I (1915) P. 44

† षट्०, पृ० ५८

[६]

इतिहासातीतकालमें दिगम्बर मुनि।

"आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥"

—यजुर्वेद अ० [illegible] मंत्र १४।

भारतवर्षका ठीक ठीक इतिहास ईस्वीपूर्व सातवीं शताब्दि तक आगा जाता है। इसके पहले की कोईभी बात विश्वसनीय नहीं मानी जाती; यद्यपि भारतीय विद्वान अपनी ९ धार्मिक-वार्ता इस कालसे भी बहुत प्राचीन मानते और उसे विश्वसनीय स्वीकार करते हैं। उसको यह वार्ता 'इतिहासातीत काल' की वार्ता समझनी चाहिये। दिगम्बर मुनियों के विषय में भी यही बात है। भगवान ऋषभदेव द्वारा एक अज्ञात अतीतमें दिगम्बर मुनिधर्मका प्रचार हुआ और उससे बाद ईस्वी पूर्व सातवीं शताब्दि तकही नहीं बल्कि आजतक निर्बाध प्रचलित है। दिगम्बर मुनिके [illegible] इतिहास की एक सामान्य रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत करना अभीष्ट है।

इतिहासातीत कालमें प्राचीन जैन शास्त्र अनेक जैन-सम्राट और जैन तीर्थंकरोंका होना प्रगट करते हैं और उनके द्वारा दिगम्बर मुनिधर्मका प्रचार भारतमें ही नहीं बल्कि दूर [illegible] देशों तक होगया था। दिगम्बर जैन शास्त्रोंके प्रथमानुयोग

शब्द जो उक्त मन्त्रमें प्रयुक्त हुये हैं उनके अर्थ कोष ग्रन्थोंमें अन्तिम जैन तीर्थंकर और दिगम्बर ही मिलते हैं†। इसलिये इस मन्त्रका सम्बन्ध भगवान् महावीरसे मानना ठीक है। जैसे बौद्ध साहित्यादिसे स्पष्ट है कि महावीर स्वामी नग्न साधु थे। इस अवस्थामें उक्त मन्त्रमें 'महावीर' शब्द 'नग्न' विशेषण सहित प्रयुक्त हुआ इस बातका द्योतक है कि उसके रचयिताको तीर्थंकर महावीरका उल्लेख करना इष्ट है। इस मन्त्रमें जो शेष विशेषण हैं वहभी जैन तीर्थंकरके सर्वथा योग्य हैं और इस मन्त्रका फलभी जैन शास्त्रानुकूल है। अतः यह मन्त्र भ० महावीरको दिगम्बर मुनि प्रगट करता है!

किन्तु भगवान महावीर तो ऐतिहासिक महापुरुष मान लिये गये हैं, इसलिये उनसे पहलेके वैदिक उल्लेख प्रस्तुत करना उचित है। सौभाग्यसे हमें 'ऋग्वेदसंहिता' (१०। १३६-२) में ऐसा उल्लेख निम्न शब्दोंमें मिल जाता है:—

"मुनयो वातवसनाः।"

भला यह वातवसन—दिगम्बर मुनि कौन थे? हिन्दू पुराण ग्रन्थ बताते हैं कि वे दिगम्बर जैन मुनि थे, जैसे कि हम पहले देख चुके हैं। औरभी देखिये, श्रीमद्भागवतमें जैन तीर्थंकर ऋषभदेवने जिन ऋषियोंको दिगम्बरत्वका उपदेश दिया था, वे 'वातरशनानां श्रमण' कहे गये हैं‡। प्रो० मकडोनल

† वेजै०, पृ० ३२-३०
‡ वेजै०, पृ० ३

किये हैं। इनमें श्नोष्ठवात्स्य दिगम्बर मुनिका द्योतक है, क्योंकि उसे 'समनिचमेढ्र' कहा गया है, जिसका भाव होता है 'अपेतप्रजननाः' *। यह शब्द 'अह्रीक' शब्द के अनुरूप है और इससे श्नोष्ठवात्स्य का दिगम्बरत्व स्पष्ट है।

इस प्रकार वेदोंसे भी दिगंबर मुनियोंका अस्तित्व सिद्ध है। अब देखिये उपनिषद् भी वेदोंका समर्थन करते हैं। 'जाबालोपनिषद्' निर्ग्रन्थ शब्दका उल्लेख करके दिगंबर साधुका अस्तित्व उपनिषद् कालमें सिद्ध करता है:—

"यथाजातरूपधरो निर्ग्रन्थो निष्परिग्रहः..........

शुक्लध्यानपरायणः..........।" (सूत्र ६)

निर्ग्रन्थ साधु यथाजात-रूप धारी तथा शुक्लध्यान परायण होता है। सिवाय निर्ग्रन्थ (जैन) मार्ग के अन्यत्र

---

* मथा०, पत्रमामय पृ० ३१-३२

† जैन ग्रन्थप्रकाश-कारकीय स्व० पं० टोडरमल जी ने आज से लगभग पौने दो सौ वर्ष पहले (?) निम्न वेद मंत्रों का उल्लेख अपने ग्रंथ 'मोक्षमार्गप्रकाश' में किया है और वे भी दिगम्बर मुनियों के द्योतक हैं:—

१. ऋग्वेद में कहा है—"ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान् ऋषभाद्यान् वर्द्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये। ॐ पवित्रं नग्नमुपस्पृशामहे येषां नग्ना जातिर्येषां वीरा इत्यादि।"

२. यजुर्वेद में है—"ॐ नमो अर्हतो ऋषभो ... पवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुरिति स्वाहा।"—"ॐ नग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरुषमर्हन्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात् स्वाहा।" (पृ० २०२)

'जिनभगवान' के समान होने की इच्छा प्रगट करके अपनी जैनभक्ति प्रगट करते हैं ×। अतः रामायण के उक्त उल्लेखसे उस कालमें दिगम्बर मुनियों का होना स्पष्ट है।

"महाभारत" में भी 'नग्न क्षपणक' के रूपमें दिगंबर मुनियों का उल्लेख मिलता है +, जिससे प्रमाणित है कि "महाभारतकाल" में भी दिगम्बर जैन मुनि मौजूद थे। जैनशास्त्रानुसार उस समय स्वयं तीर्थंकर अरिष्टनेमि विद्यमान थे।

हिन्दू पुराण ग्रंथ भी इस विषय में वेदादिग्रंथों का समर्थन करते हैं। प्रथम जैन तीर्थङ्कर ऋषभदेव जी को श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराण दिगम्बर मुनि प्रगट करते हैं, यह हम देख चुके। अब 'विष्णुपुराण' में और भी उल्लेख है वह देखिये †। वहाँ मैत्रेय पाराशरऋषिसे पूंछते हैं कि 'नग्न किसको कहते हैं?' उत्तरमें पाराशर कहते हैं कि "जो वेदको न माने वह नग्न है।" अर्थात् वेदविरोधी सभी साधु 'नग्न' हैं। इस संबंध में देव और असुर संग्राम की कथा कहकर किस प्रकार विष्णुके द्वारा जैनधर्म की उत्पत्ति हुई, [illegible] यह कहते हैं। इसमें भी जैनमुनिका स्वरूप 'दिगंबर' लिखा है—

× योगवासिष्ठ अ० १५ श्लो० ८

+ आदिपर्व, अ० ३ श्लो० २६-२७

† विष्णुपुराण तृतीयांश अ० १७ व १८—जैहि०, पृ० ५९ व मुद्राराक्षस अंक

त्वमें जब वासके दिगम्बर वेषधारी तीर्थंकर महामुनीश मिलते हैं, तब उन्हें जैन और नग्न मानना अनुचित नहीं है। वैसे बौद्ध साहित्य भ० पार्श्वनाथके तीर्थवर्ती मुनियोंको नग्न प्रगट करता है×। अतः इस स्रोतसे भी प्राचीनकालमें दिगम्बर मुनियोंका होना सिद्ध है।

इस अवस्थामें जैनशास्त्रोंका यह कथन विश्वसनीय ठहरता है कि भ० ऋषभदेवके समयसे बराबर दिगम्बर जैन मुनि होते आरहे हैं और उनके द्वारा जगतका महत् कल्याण हुआ है। जैनतीर्थंकर सबही राजपुत्र थे और बड़े २ राज्योंको त्यागकर दिगम्बर मुनि हुये थे। भारतके प्रथम सम्राट् भरत, जिनके नामसे यह देश भारतवर्ष कहलाता है, दिगम्बर मुनि हुयेथे। उनके भाई बाहुबलिजी अपनी तपस्याके लिए प्रसिद्ध हैं। तपस्वी रूपमें उनकी महान् मूर्ति आजभी श्रवणबेलगोल में दर्शनीय वस्तु है। उनकी उस महाकाय नग्नमूर्तिके दर्शन करके स्त्री-पुरुष, बालक वृद्ध भारतीय तथा विदेशी अपने को सौभाग्यशाली समझते हैं। रामचन्द्रजी, सुग्रीव, युधिष्ठिर आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस कालमें हुये [illegible] जिनके सच्च- रित्रोंसे जैन शास्त्र भरे हुये हैं। सारांशतः गतकालमें भारत में दिगंबरत्व अपनी अपूर्व छटा दर्शा चुका है।

× 'महावग्ग' [१-७०-३] में है कि बौद्ध भिक्षुओंने [illegible] और भोजन पानहीन मनुष्यों को दीक्षितकर लिया; जिसपर लोग कहने लगे [illegible] बौद्धभी "तित्थियों" की नकल करने लगे। तित्थिय म० बुद्ध और म० महावीर से प्राचीन साधु और क्षमकार दि० जैन साधु थे। इसलिये इन्हें भ० पार्श्वनाथ के तीर्थंकर मुनि मानना ठीक है। ममबु०, पृ० २३६-२४७, व जैसिभा०, १।१-४।२२-३४; तथा IA, august 1930.

श्री बाहुबलि गोम्मट स्वामी, श्रवण बेलगोला। [पृ० ८४]

[१०]

भ० महावीर और उनके समकालीन दिगम्बर मुनि ।

'निगण्ठो, आवुसो नाथपुत्तो सव्वञ्ञू, सव्वदस्सावी अपरिसेसं ञाण दस्सनं परिजानाति।'

—मज्झिमनिकाय ।

'निगण्ठो नातपुत्तो संघी चेव गणी च गणाचार्यो च ञातो यसस्सी तित्थकरो साधु सम्मतो बहुजनस्स रत्तञ्ञू चिर पव्वजितो अद्धगतो वयो अनुप्पत्तो।' —दीघनिकाय ।

भगवान् महावीर वर्द्धमान् ज्ञातृवंशी क्षत्रियोंके प्रमुख राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणी त्रिशलाके सुपुत्र थे। रानी त्रिशला वज्जियन राजसंघके प्रमुख लिच्छवि-अग्रणी राजा चेटककी सुपुत्री थीं। लिच्छवि क्षत्रियोंका आवास समृद्धिशाली नगरी वैशाली में था। ज्ञातृक क्षत्रियों की बस्ती भी उसीके निकट थी। कुण्डग्राम और कोल्लाग-सन्निवेश उनके प्रसिद्ध नगर थे। भगवान् महावीर वर्द्धमान का जन्म कुण्डग्राम में हुआ था और [illegible] अपने ज्ञातृवंशके कारण "ज्ञातृपुत्र" के नामसे भी प्रसिद्ध थे। बौद्ध ग्रन्थोंमें उनका उल्लेख इसी नामसे हुआ मिलता है और वहां उन्हें

म० गौतम बुद्धका समकालीन बताया गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो भ० महावीर आजसे लगभग ढाई हजार वर्ष पहले इस धरातलको पवित्र करते थे और वह क्षत्री राजपुत्र थे।*

भरी जवानी में ही महावीरजी ने राजपाटका मोह त्याग कर दिगम्बर मुनिका वेष धारण किया था और बीस वर्ष तक कठिन तपस्या करके वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी तीर्थंकर होगये थे। 'मज्झिमनिकाय' नामक बौद्ध ग्रन्थमें उन्हें सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और अशेष ज्ञान तथा दर्शनका ज्ञाता लिखा है।† तीर्थंकर महावीरने सर्वज्ञ होकर देश-विदेश में भ्रमण किया था और उनके धर्म प्रचारसे लोगोंका आत्मकल्याण हुआ था। उनका विहार संघ सहित होता था और उनकी विनय हर कोई करता था। बौद्ध ग्रंथ 'दीघनिकाय' में लिखा है कि "निग्रन्थ ज्ञातृपुत्र (महावीर) संघके नेता हैं, गणाचार्य हैं, दर्शन विशेषके प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं, तीर्थंकर हैं, बहु मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं, बहुत कालसे साधु अवस्थाका पालन करते हैं और अधिक वय प्राप्त हैं।"‡

जैन शास्त्र 'हरिवंश पुराण' में लिखा है कि "भगवान महावीरने मध्यके (काशी, कौशल, कौशल्य, कुसंध्य, अश्वष्ट,

---

* विशेषके लिये हमारा "भगवान महावीर और म० बुद्ध" नामक ग्रन्थ देखो।

† मज्झिमनिकाय (P. T. S.) भा० १ पृ० ९२-९३

‡ दीघनिकाय (P. T. S.) भा० १ पृ० ४८-४९

त्रिगर्तपंचाल, भद्रकार, पटच्चर, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एवं वृकार्थक), समुद्रतटके (कलिंग, कुरुजांगल, कैकेय, आत्रेय, कांबोज, वाल्हीक, यवनश्रुति, सिंधु, गांधार, सौवीर, सूर, भीरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज और क्वाथतोय) और उत्तर दिशाके (तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि) देशों में विहार कर उन्हें धर्मकी ओर ऋजु किया था।"×

भगवान् महावीरका धर्म अहिंसा प्रधान तो था ही, किन्तु उन्होंने साधुओंके लिये दिगम्बरत्वका भी उपदेश दिया था+। उन्होंने स्पष्ट घोषित किया था कि जैनधर्ममें दिगम्बर साधु ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है। बिना दिगम्बर वेष धारण किये निर्वाण प्राप्त कर लेना असंभव है। और उनके इस वैज्ञानिक उपदेशका आदर आबाल-वृद्ध-वनिताने किया था।

विदेह में जिस समय भ० महावीर पहुंचे तो उनका वहां लोगों ने विशेष आदर किया। वैशाली में उनके शिष्यों की संख्या अधिक थी। स्वयं राजा चेटक उनका शिष्य था। अंगदेश में जब भगवान पहुंचे तो वहां के राजा कुणिक समाज प्रभु के साथ सारी प्रजा भगवान की पूजा करने के लिये उमड़ पड़ी। राजा कुणिक कौशाम्बी तक महावीर स्वामी को पहुंचाने गये। कौशाम्बी नरेश ऐसे प्रतिबुद्ध हुये कि वह दिगंबर मुनि होगये। मगधदेश में भी भगवान् महा-

---

× हरिवंशपुराण (कलकत्ता) पृ० १८

+ [illegible]

वीर का खूब विहार हुआ था और उनका अधिक समय राजगृह में व्यतीत हुआ था। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार भगवान् के अनन्य भक्त थे और उन्होंने धर्मप्रभावना के अनेक कार्य किये थे। श्रेणिकके अभयकुमार, वारिषेण आदि कई पुत्र दिगंबर मुनि हो गये थे। दक्षिण भारतमें जब भगवान् का विहार हुआ तो हेमांग देशके राजा जीवंधर दिगम्बर मुनि हो गये थे। इस प्रकार भगवान् का जहां २ विहार हुआ वहां वहां दिगंबर धर्मका प्रचार हो गया। शतानीक, उदयन, आदि राजागण, मेघकुमार, नंदिषेण आदि राजकुमार, शालिभद्र, धन्यकुमार, प्रीतंकर आदि धनकुबेर, इन्द्रभूति, गौतम आदि ब्राह्मण विद्वान्, विद्युच्चर आदि चतुर पतितात्मायें—अरे न जाने कौन कौन भगवान् महावीर की शरणमें आकर मुनि हो गये।*

सचमुच अनेक धर्म-पिपासु भगवान् के निकट आकर धर्मामृत पान करते थे। यहां तक कि स्वयं म० गौतमबुद्ध और उनके संघ पर भगवानके उपदेशका प्रभाव पड़ा था। बौद्ध भिक्षुओं ने भी नग्नता धारण करनेका आग्रह म० बुद्ध से किया था।† इसपर यद्यपि म०बुद्धने नग्न वेषको बुरा नहीं बतलाया, किन्तु उससे कुछ ज्यादा शिष्य पानेका लाभ न देखकर उसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया।‡ पर तोभी एक

---

* भमबु०, पृष्ठ ९४-९६ † भमबु०, [illegible] १०५-११०

‡ 'महावग्ग' (८-१५-१) में है कि "एक बौद्ध भिक्षु ने म० बुद्ध के पास नंगे हो आकर कहा कि भगवन् ने संयमी पुरुष की बहुत प्रशंसा की

देखिये बौद्धग्रन्थोंके आधारसे इस विषयमें डॉ० स्टीवेन्सन लिखते हैं +:—

Tirthakas (Makkhali Goshal etc.) appear all to have adopted some or other doctrines or practices, which makes part of the Jaina system, probably from the Jains themselves .. It appears from the preceding remarks, that Jaina ideas and practices must have been current [illegible] the time of Mahavira and independently of him. This combined with other arguments, leads us [illegible] the opinion that the *Nirgranthas* were really in existence long before Mahavira."—(IA. IX, 162)

Prof T. W. Rhys Davids notes in the "Vinaya Texts" that "The sect now called Jains are divided into two classes, Digambara & Swetambara; the latter of which eat naked. They are known [illegible] be the successors of the school called *Niganthas* in the Pali Pitakas "—S.B.E. XIII, 41

Dr. Buhler writes, "From Buddhist accounts in their canonical works as well as in other books, it may be seen that this rival (Mahavira) was a dangerous and influential one and that even in Buddha's time his teaching had spread considerably . Also they say in their description of other rivals of Buddha that these, [illegible] order to gain esteem, copied the *Nirgranthas* and went unclothed, or that they were looked upon by the people as *Nirgrantha* holy ones, because they happened to lost their clothes "—AISJ , p 36

+ जैनमित्र०, ११२-११६ "The people bought clothes in abundance for him, but he (Kassapa) refused them as he thought that if he put them on, would not [illegible] treated with the same respect. Kassapa said,

"(एक तीर्थंक नग्न हो गया) लोग उसके लिये बहुतसे वस्त्र लाये, किन्तु उसको उसने स्वीकार नहीं किया। उसने यही सोचा कि, यदि मैं वस्त्र स्वीकार करता हूं तो संसारमें मेरी धार्मिक प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह कहने लगा कि लज्जा रक्षण के लिए ही वस्त्रधारण किया जाता है और लज्जा ही पापका कारण है; हम अर्हत् हैं, इसलिए विषयवासना से अलिप्त होनेके कारण हमें लज्जाकी कुछभी परवाह नहीं।' इनका यह कथन सुनकर बड़ी नम्रता से वहां इसके पांच सौ शिष्य बन गए; यहांतक जंबूद्वीप में इसी को लोग बुद्ध कहने लगे।'

यह उल्लेख संभवतः मक्खलि गोशाल अथवा पूर्ण काश्यप के सम्बन्ध में है। ये दोनों साधु भ० पार्श्वनाथकी शिष्यपरंपरा के मुनि थे*। मक्खलि गोशाल भ० महावीरसे रुष्ट होकर अलग धर्मप्रचार करने लगा था और वह "आजीविक" संप्रदायका नेता बन गया था। इस संप्रदाय का निकास प्राचीन जैनधर्मसे हुआ था † और इसके साधु भी नग्न रहते थे ‡। पूरन-कस्सप मंखलिका साथी और

"Clothes are for the covering of shame and the shame is the effect of sin I am an Arahat. As I am free from evil desires, I know no shame." etc

—BS pp 74-75

* भमबु०, पृष्ठ १०-२१

† गोद्, वर्ष ३ [illegible] ३१९ व भमबु० पृष्ठ १०—२१

‡ 'आजीविको ति नग्ग-समणको।'—पपंच-सूदनी ११९-६,—IHQ., III, 248.

पहले भी दिगम्बर रहा था। सचमुच दिगम्बर जैनधर्म पहले से ही चला आरहा था, जिसका प्रभाव इन लोगों पर पड़ा था।

इस पर, भगवान महावीरके अवतीर्ण होनेसे दिगम्बरत्वका महत्व औरभी बढ़ गया। यहांतककि दूसरी संप्रदायोंके लोगभी उनके धर्म धारण करनेको लालायित होगये, जैसेकि ऊपर प्रकट किया गया है।

बौद्धशास्त्रोंमें निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) महामुनि महावीरके विहारका उल्लेखभी मिलता है। 'मज्झिम निकाय' के 'अभय-राजकुमार सुत्त' से प्रगट है कि वे राजगृहमें एक समय रहे थे†। 'उपालीसुत्त' से भ० महावीरका नालन्दामें विहार करना स्पष्ट है। उस समय उनके साथ एक बड़ी संख्यामें निर्ग्रन्थ साधु थे‡। 'सामगामसुत्त' से यह प्रगट है कि भगवान् ने पावासे मोक्ष प्राप्त की थी +। 'दीघनिकाय' का 'पासादिक सुत्त' भी इसी बातका समर्थन करता है ×। 'संयुत्तनिकाय' से भगवान महावीरका संघसहित 'मच्छिकाखण्ड' में विहार करना स्पष्ट है+। 'महावग्गसुत्त' में

---

† मज्झिम० (P. T. S) भा० १ पृ० ३९२—भमबु० पृ० १४१

‡ मज्झिम० १।३७१ व "The M. N. tells us that once Nigantha Nathaputta was at Nalanda with a big retinue of the Niganthas."—AIT., p. 147.

+ मज्झिम० १।९३—भमबु० २०२

× दीघ०, III 117-118,—भमबु० पृ० ५१२

+ संयुत्त० ४।२८६—भमबु० पृ० २११

राजगृहके राजा अजातशत्रुको भगवान महावीरके दर्शनके लिये गया लिखा है ✱। 'विनयपिटक' के 'महावग्ग' ग्रंथमें महावीर स्वामीका वैशालीमें धर्मप्रचार करना प्रमाणित है +। एक 'जातक' में भ० महावीरको 'अचेलक नातपुत्त' कहा गया है ×। 'महावस्तु' से प्रगट है कि अवन्तीके राजपुरोहित का पुत्र भागकर तक्षशिला चला गया था। वहां उसने निग्रन्थ नातपुत्त (महावीर जी) धर्म प्रचार करते पाया ‡। 'दीघनिकाय' से यह स्पष्ट है कि कोशलके राजा पसेनदीने निर्ग्रन्थ नातपुत्त (महावीर) को नमस्कार किया था ◆। उसकी रानी मल्लिका ने निर्ग्रन्थोंके उपयोगके लिये एक भवन बनवाया था †। सारांश यह कि बौद्ध शास्त्र भी भगवान् महावीरके दिग्विजयी और सफल विहारकी साक्षी देते हैं।

भगवान्के विहार और धर्मप्रचारसे जैनधर्मका विशेष उद्योत हुआ था। जैनशास्त्र कहते हैं कि उनके संघमें चौदह हजार दिगम्बर मुनि थे; जिनमें ९९०० साधारण मुनि, ३०० अङ्गपूर्वधारी मुनि, १३०० अवधिज्ञानधारी मुनि, ९०० ऋद्धिविक्रिया युक्त, ५०० चार ज्ञानके धारी, ७०० केवलज्ञानी

✱ भमबु०, पृ० १२०

+ महावग्ग ६। ३१। ११—भमबु पृ० २११-२३६

× जातक ३। १८२

‡ ASM., p. 159.

◆ दीघ० १।५८-६९—IHQ. I, 153.

† LWB., p. 109

और ९०० अनुत्तरवादी थे। महावीर-संघके ये दिगम्बर मुनि दस गणोंमें विभक्त थे और ग्यारह गणधर उनकी देख-रेख रखते थे‡। इन गणधरोंका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है:—

(१) इन्द्रभूति गौतम, (२) वायुभूति, (३) अग्निभूति, ये तीनों गणधर मगध देशके गोर्वर ग्राम निवासी वसुभूति (शांडिल्य) ब्राह्मणकी स्त्री पृथ्वी (स्थण्डिला) और केसरीके गर्भसे जन्मे थे। गृहस्थाश्रम त्यागनेके बाद ये क्रमसे गौतम, गार्ग्य और भार्गव नामसे भी प्रसिद्ध हुये थे। जैन होनेसे पहले ये तीनों वेदधर्मपरायण ब्राह्मण विद्वान् थे। भ०महावीर के निकट इन तीनोंने अपने कई सौ शिष्यों सहित जैन-धर्मकी दीक्षा ग्रहणकी थी और ये दिगम्बर मुनि होकर मुनियोंके नेता हुये थे। देश देशान्तरमें विहार करके इन्होंने खूब धर्म-प्रभावनाकी थी।+

चौथे गणधर व्यक्त कोल्लाग सन्निवेश निवासी धन-मित्र ब्राह्मणकी वारुणी × नामक पत्नीकी कोख से जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर वहभी गणनायक हुये थे।

पांचवें सुधर्म नामक गणधरभी कोल्लाग सन्निवेशके निवासी धम्मिल ब्राह्मणके सुपुत्र थे। इनकी माताका नाम भद्दिला था। भ० महावीरके उपरान्त इनके द्वारा जैनधर्मका विशेष प्रचार हुआ था।+

---

‡ भग०, ११०। + दलैंब०, पृ० ६०-६१।
× दलैंब०, पृ० ८। + दलैंब०, पृ० ८।

छठे मण्डिक नामक गणधर मौर्याख्यदेश निवासी धनदेव ब्राह्मणकी विजया देवी स्त्रीके गर्भसे जन्मे थे। दिगम्बर मुनि होकर यह वीर सङ्घमें सम्मिलित हो गये थे और देश विदेशमें धर्म प्रचार किया था।

सातवें गणधर मौर्यपुत्र भी मौर्याख्य देशके निवासी 'मौर्यक' ब्राह्मणके पुत्र थे। इन्होंने भी ३५० ब्राह्मणोंके सिवाय दिगम्बरीय दीक्षा ग्रहण करके सर्वत्र धर्म-प्रचार किया था।

आठवें गणधर अकम्पन थे, जो मिथिलापुरी निवासी देव नामक ब्राह्मणकी जयन्ती नामक स्त्रीके उदरसे जन्मे थे। इन्होंने भी खूब धर्मप्रचार किया था।

नवें अचल नामक गणधर कोशलापुरी के वसु विप्रके सुपुत्र थे। इनकी माँका नाम नन्दा था। इन्होंने भी दिगम्बर मुनि हो सर्वत्र विहार किया था।

दसवें गणधर मैत्रेय थे। यह वत्सदेशस्थ तुङ्गिकाख्य नगरीके निवासी दत्त ब्राह्मणकी स्त्री करुणाके गर्भसे जन्मे थे। इन्होंनेभी अपने गणके साधुओंसहित धर्म प्रचार किया था।

ग्यारहवें गणधर प्रभास राजगृह निवासी बल नामक ब्राह्मणकी पत्नी भद्राकी कुक्षिसे जन्मे थे। और दिगम्बर मुनि तथा गणनायक होकर सर्वत्र धर्मका उद्योत करते हुए विचरे थे।*

---

* दिजैन०, पृ० ८

इन पशुवरोंकी अध्यक्षतामें रहे उपरोक्त चौदह हज़ार दिगम्बर मुनियोंने तत्कालीन भारतका महान् उपकार किया था। विद्या, धर्मज्ञान और सदाचार उनके सदुद्योगसे भारतमें खूब फैले थे। जैन और बौद्धशास्त्र यही प्रकट करते हैं :—

"The Buddhist and Jaina texts tell us that the itinerant teachers of the time wandered about in the country, engaging themselves wherever they stopped in serious discussion on matters relating to religion, philosophy, ethics morals and polity." †

भावार्थ—बौद्ध और जैन शास्त्रोंसे ज्ञात होता है कि तत्कालीन धर्म-गुरु देशमें सर्वत्र विचरते थे और जहां वे ठहरते थे वहां धर्म, सिद्धान्त, आचार, नीति और राष्ट्रवार्ता विषयक गम्भीर चर्चा करते थे। सचमुच उनके द्वारा जनता का महान् हित हुआ था।

बौद्धशास्त्रोंमें भी भ० महावीरके संघके जिन्हीं दिगम्बर मुनियोंका उल्लेख मिलता है, यद्यपि जैनशास्त्रोंमें उनका पता लगा लेना सुगम नहीं है। जो हो, उससे यह स्पष्ट है कि भ० महावीर और उनके दिगम्बर शिष्य देशमें निर्बाध विचरते और लोक कल्याण करते थे।

† LWB., p. 50

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारके पुत्र राजकुमार अभय दिगम्बर मुनि होगये थे, यह बात बौद्धशास्त्रभी प्रगट करते हैं *। इन राजकुमारने ईरान देशके वासियोंमें भी धर्मप्रचार कर दिया था। फलतः उस देशका एक राजकुमार आर्द्रक निर्ग्रन्थ साधु होगया था। †

बौद्ध शास्त्र वैशालीके दिगम्बर मुनियोंमें सुनक्खत्त, कलारमत्थुक और पाटिकपुत्र का नामोल्लेख करते हैं। सुनक्खत्त एक लिच्छवि राजपुत्र था और वह बौद्धधर्म छोड़कर निर्ग्रन्थ मतका अनुयायी हुआ था ‡।

वैशालीके कलिमट्ठ एवं कन्दरमसुक नामक दिगम्बर मुनिके व्रतोपवासोंका उल्लेख बौद्धशास्त्रोंमें मिलता है। उन्होंने यावत् जीवन नग्न रहने और नियमित परिधिमें विहार करने की प्रतिज्ञा ली थी। +

श्रावस्तीके कुल पुत्र (Councillor's son) अर्जुन भी दिगम्बर मुनि होकर सर्वत्र विचरे थे। X

---

* PB., p. 90 व भमबु०, पृ० २६६।
† ADJB., I p. [illegible] ‡ भमबु, पृ० २२२।
+ "अथेको कन्दरमसुको वेसालियं पटिवसति लाभग्ग-प्पत्तो च [illegible] यसग्ग-प्पत्तो च वज्जिगामे। तस्स सत्तवत-पदानि समत्तानि समादिन्नानि होन्ति—'यावजीवं अचेलको अस्सं, न वत्थं परिदहेय्यं; यावजीवं ब्रह्मचारी अस्सं न मेथुनं पटिसेवेय्यं ......इत्यादि।"—दीघनिकाय (P. T. S) भा० ३ पृ० ९-१० व भमबु०, पृ० २१३।
x PB p. 88 व भमबु०, पृ० १६०।

वह दिगम्बर मुनि और उनके साथ जैन साध्वीयाँभी सर्वत्र धर्मोपदेश देकर मुमुक्षुओंको जैनधर्ममें दीक्षित करते थे+। इसी उद्देश्यको लेकर वे नगरोंके चौराहों पर जाकर धर्मोपदेश देते और वाद भेरी बजाते थे। बौद्ध शास्त्र कहते हैं कि "इस समय तीर्थंक साधु—अनेक पक्षकी अष्टमी, चतु-र्दशी और पूर्णमासीको एकत्र होते थे और धर्मोपदेश करते थे। लोग उसे सुनकर प्रसन्न होते और उनके अनुयायी बन जाते थे।"*

इन साधुओंको जहांभी अवसर मिलता था वहीं वे अपने धर्मकी श्रेष्ठताको प्रमाणित करके अवशेष धर्मोंको गौण प्रगट करते थे।

भ० महावीर और भ० गौतम बुद्ध दोनों ने ही अहिंसा धर्मका उपदेश दियाथा; किन्तु भ० महावीरकी अहिंसा मन, वचन, काय पूर्वक जीवरक्षाके विषय सर्वोच्च विधान था—भोजन या मोक्ष होनेके लिये भी उसमें जीवोंका प्राण-व्यपरो-पण नहीं किया जा सकताथा। इसके विपरीत भ० बुद्धकी अहिंसामें बौद्ध भिक्षुओंको मांस और मत्स्य भोजन ग्रहण करने की खुली आज्ञा थी। एक बार नहीं अनेक बार स्वयं० भ० बुद्ध ने मांस-भोजन किया था। ऐसेही अवसरों पर दिगम्बर मुनि

+ बौद्धों के भेद-येही वक्तव्यों से यह प्रगट है। भमबु०, पृ० १४६—१४८।

* महावग्ग २।१।१ व भमबु०, [illegible] २४७। † भमबु० पृष्ठ १७०।

बौद्ध भिक्षुओंको खाते हमलोग देखेंगे। एक अवसर पर जब भगवान महावीरने बुद्धके इस हिंसक कर्मका विरोध किया, तो बुद्धने कहा: "भिक्षुओ, यह पहला मौका नहींहै बल्कि नातपुत्त (महावीर) इससे पहिलेभी कई मरतबा खास मेरे लिये पके हुए मांसको मेरे भक्षण करने पर आक्षेप कर चुके हैं †।" एक दूसरे बार जब वैशालीमें म० बुद्धने सेनापतिसिंहके घर पर मांसाहार किया था, बौद्ध शास्त्र कहता है कि "निर्ग्रन्थ एक बड़ी संख्यामें वैशालीमें सड़क २ और चौराहे २ पर यह शोर मचाते कहते फिरे कि आज सेनापतिसिंहने एक बैलका वध कियाहै और उसका आहार श्रमण गौतमके लिये बनाया है। श्रमण गौतम जानबूझ कर कि यह बैल मेरे आहार के निमित्त मारा गया है, पशुका मांस खाताहै; इसलिए वही उस पशुके मारनेके लिये घातक है‡।" इन उल्लेखोंसे उस समय दिगम्बर मुनियोंका निर्ग्रन्थरूपमें जनताके मध्य विचरने और धर्मोपदेश देनेका स्पष्टीकरण होता है।

---

† Cowell, Jatakas II 182—भ० बुद्ध, पृष्ठ २४१।

‡ "At that time a great number of the Niganthas (running) through Vesali, from road to road, cross-way to cross-way, with outstretched arms cried, 'Today Siha, the General has killed a great ox and has made a meal for the Samana Gotama, the Samana Gotama knowingly eats the meat of an animal killed for this very purpose, & has thus become virtually the author of that deed.'"—Vinaya Texts, S.B.E., Vol XVII, p. 116 & HG., p. 85.

बौद्ध गृहस्थोंने भी भरसक दिगम्बर मुनियोंको अपने घरके अन्तःपुरमें बुलाकर परीक्षा की थी+। सारांशतः दि० मुनि सब समय हाट—बाज़ार, घर—महल, रंक—राव—सब ठौर सबही को धर्मोपदेश देते हुये विहार करते थे। अब आगेके पृष्ठोंमें भगवान महावीरके उपरान्त दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्व और विहारका विवेचन कर देना उचित है।

+ HG., pp. 88—95 व मम्बु०, पृष्ठ २३१—२३६।

नन्द-साम्राज्यमें दिगम्बर-मुनि !

"King Nanda had taken away 'image' known as "The Jina of Kalinga'...... ...Carrying away idols of worship as a mark of trophy and also showing respect to the particular idol is known in later history. The datum (1) proves that Nanda was a Jaina and (2) that Jainism was introduced in Orissa very early...*"

—K.P. Jayaswal.

शिशुनागवंशमें कुणिक अजातशत्रुके उपरान्त कोई पराक्रमी राजा नहीं हुआ और मगधसाम्राज्यकी बागडोर नन्दवंशके राजाओंके हाथमें आगई। इस वंशमें 'वर्द्धन' (Increaser) उपाधि-धारी राजा नन्द विशेष प्रख्यात और प्रतापी था। उसने दक्षिण पूर्व और पश्चिमीय समुद्रतट वर्ती देश जीत लिये थे तथा उत्तरमें हिमालय प्रदेश और काश्मीर एवं अवन्ती और कलिंग देशको भी उसने अपने आधीन कर लिया था†। कलिंग-विजयमें वह वहांसे 'कलिंग-जिन' नामक एक प्राचीन मूर्ति लेआया था और उसे विजय के साथ उसने अपनी राजधानी पाटलिपुत्रमें स्थापित किया

* JBORS., Vol. XIII p. 245.

† Ibid., Vol. I. pp. 78–79

था। इसके इस कार्यसे नन्दवंशका जैनधर्मावलम्बी होना स्पष्ट है। 'मुद्राराक्षस नाटक' और जैनसाहित्यसे इस वंशके राजाओंका जैनी होना सिद्ध है और उनके मन्त्रीभी जैन थे। अन्तिम नन्दका मन्त्री राक्षस नामक नीतिनिपुण पुरुष था। 'मुद्राराक्षस' नाटकमें उसे जीवसिद्धि नामक क्षपणक अर्थात् दिगम्बर जैन मुनिके प्रति विनय प्रगट करते दर्शाया गया है तथा यह जीवसिद्धि सारे देशमें—राजदरबार और अन्तःपुर—सब ही ठौर बेरोक टोक विहार करता था, यह बातभी उक्त नाटकसे स्पष्ट है‡। ऐसा होना है भी स्वाभाविक; क्योंकि जब नन्दवंशके राजा जैनी थे तो उनके साम्राज्यमें दिगम्बर जैन मुनिकी प्रतिष्ठा होना लाज़मी थी। जनश्रुतिसे यहभी प्रगट है कि अन्तिम नन्दराजाने 'पञ्चपहाड़ी' नामक पाँच स्तूप पटनामें बनवाये थे+। 'पञ्चपहाड़ी' (राजगृह) जैनों का प्रसिद्ध तीर्थ है। नन्दने उसीके अनुरूप पाँच स्तूप पटना

---

‡ Chanakya says.—

"There is a fellow of my studies, deep
The Brahman Indusarman, him I sent,
When just I vowed the death of Nanda, hither;
And here repairing as a Buddha (क्षपणक) mendicant."†

† Having the marks of a Ksapanaka... the individual is a Jaina.... Raksasa repose in him implicit confidence.—HDW., p. 10

+ "Sir G. Grierson informs me that the Nandas were reputed to be bitter enemies of the Brahmans. ....the Nandas were Jainas and therefore hateful to

सम्पन्न किया था। कहते हैं कि बङ्गालके कोटिकपुर नामक स्थान पर उन्होंने सर्वज्ञता प्राप्तकी थी + । उनका विहार बङ्गालके प्रसिद्ध नगर पुंड्रवर्द्धन, ताम्रलिप्त आदिमें हुआ था। एक दफा वह मथुराको पहुँचे थे। अन्तमें जब वह राजगृह विपुलाचलसे मुक्त हो गये, तो मथुरामें उनकी स्मृतिमें एक स्तूप बनाया गया था ×।

मथुरा जैनोंका प्राचीन केन्द्र था। वहां भ० पार्श्वनाथ जी के समयका एक स्तूप मौजूद था ÷। इसके अतिरिक्त मध्यकालमें वहां पांच सौ एक स्तूप और बनाये गये थे, क्योंकि वहांपर इतने ही दिगम्बर मुनियोंने समाधिमरण किया था। ये सब मुनि श्री जम्बूस्वामीके शिष्य थे। जिस समय जम्बूस्वामी दिगंबर मुनि हुये तो उस समय विद्युच्चरनामक एक नामी डाकू भी अपने पांच सौ साथियों सहित दिगंबर मुनि हो गया था। एक दफा यह मुनिसङ्घ देश-विदेशमें विहार करता हुआ मथुरा पहुँचा। वहां महाउद्यानमें वह ठहर गया। उपरान्त रातको जब मुनियों पर वहां महा

+ "In Kotikapur Jambu attained emancipation (? Omniscience)"

—वीर, वर्ष १ पृष्ठ १७।

× अनेकान्त, वर्ष १ पृष्ठ १८८ :—

"मगधादिमहादेश मथुरादिपुरीस्तथा। कुर्वन् धर्मोपदेशं स केवलज्ञानलोचनः ॥१२-११२॥ वर्षाष्टादशपर्यन्तं स्थितस्तत्र जिनाधिपः, ततो जगाम निर्वाणं केवली विपुलाचलात् ॥११६॥—जम्बूस्वामी चरित

÷ JGAM., p. 13

'मउडधरेसुं चरिमो जिणदिक्खं धरदि चन्द्रगुत्तो य।'
—तिलोय पण्णत्ति ‡

नन्द राजाओंके पश्चात् मगधका राजमुकुट चन्द्रगुप्त नामके एक क्षत्रिय राजपुत्रके हाथ लगा था। इसने अपने भुजविक्रमसे प्रायः सारे भारत पर अधिकार कर लिया था और 'मौर्य' नामक राजवंशकी स्थापना की थी। जैनशास्त्र इस राजाको दिगम्बर मुनि श्रुतकेवलि भद्रबाहुका शिष्य प्रगट करते हैं *। यूनानी राजदूत मेगास्थनीज़भी चन्द्रगुप्तको श्रमण-भक्त प्रगट करता है †। सम्राट् चन्द्रगुप्तने

---

‡ जैहि०, भा० १३ पृ० ५३१

* "[illegible] । [illegible] ॥७॥

[illegible] । [illegible] ॥८॥"—भद्र०

"[illegible] (भद्रबाहु) [illegible] । [illegible] ॥१६॥"—भद्र०

† "That Chandragupta was a member of the Jaina community is taken by their writers as a matter of course, and treated as a known fact, which needed neither argument nor demonstration. The documentory evidence to this effect is of comparatively early date, and apparently absolved from all suspicion...... ..The testimony of Megasthenes would likewise seem to imply that Chandragupta submitted to the devotional teaching of the *Sram-*

दक्षिण भारतको चले गये थे + । श्रवणबेलगोलाका कटवप्र नामक पर्वत उन्हींके कारण "चन्द्रगिरि" नामसे प्रसिद्ध होगया है, क्योंकि उस पर्वत पर चन्द्रगुप्तने तपश्चरण किया था और वहीं उनका समाधिमरण हुआ था + ।

बिन्दुसारने जैनियोंके लिये क्या किया ? यह ज्ञात नहीं है, किन्तु जब उसका पिता जैन था, तो उस पर जैन प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है × । उस पर उसका पुत्र अशोक अपने

+ Jaina tradition avers that Chandragupta Maurya was a Jaina, and that, when a great twelve years' famine occurred, he abdicated, accompanied Bhadrabahu, the last of the saints called *Srutakevalins*, to the, South, lived as an ascetic at Sravanabelgola in Mysore and ultimately committed Suicide by Starvation at that place, where his name is still held in remembrance. In the second edition of this book I rejected that tradition and dismissed the tale as 'imaginary history' But on reconsideration of the whole evidence and the objections urged against the credibility of the story, I am now disposed to believe that the tradition probably is true in its main outline and that chandragupta really abdicated and became a Jaina ascetic."

—Sir Vincent Smith, EHI, p. 154

+ Narasimhachar's Sravanabelagola, p. 25-40, शिलो०, भाग ० पृ० २४१-२५० तथा जैनशि० भूमिका पृ० ५४—७०

× "We may conclude — that Vindusara followed the faith (Jainism) of his father (Chandragupta)

आदि दिगम्बर जैनाचार्योंके संरक्षणमें रहा जैनसंघ खूब फला फूला था। जिस साम्राज्यके अधिष्ठाता ही स्वयं जब दिगम्बर मुनि होकर धर्मप्रचार करनेके लिये तुल गये तो भला कहिये जैनधर्मकी विशेष उन्नति और दिगम्बर मुनियोंकी बाहुल्यता उस राज्यमें क्यों न होती! मौर्योंका नाम जैनसाहित्यमें इसी लिए स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है।

[१२]

सिकन्दर महान् एवं दिगम्बरमुनि !

"Onesikritos says that he himself was sent to converse with these sages. For Alexander heard that these men (Sramans) went about naked, inured themselves to hardships and were held in highest honour; that when invited they did not go to other persons." —Mc Crindle, Ancient India, p. 70.

जिस समय अन्तिम नन्दराजा भारतमें राज्य कर रहे थे और चन्द्रगुप्त मौर्य अपने साम्राज्यकी नींव जमानेमें लगे हुये थे, उस समय भारतके पश्चिमोत्तरसीमाप्रान्त पर यूनानका प्रतापी वीर सिकन्दर अपना सिक्का जमा रहा था। जब वह तक्षशिला पहुँचा तो वहां उसने दिगम्बर मुनियों की बहुत प्रशंसा सुनी। उसने चाहा कि वे साधुगण उसके सम्मुख लाये जावें; किन्तु ऐसा होना असंभव था, क्योंकि दिगं-

ससैन्य यूनानको लौटा तो मुनि कल्याण उसके साथ हो लिये थे, किन्तु ईरानमें ही उनका देहावसान हो गयाथा । अपना अन्त समय जानकर उन्होंने जैनव्रत सल्लेखनाका पालन किया था । नंगे रहना, भूमिशोधकर चलना, हरितकायका विराधन न करना, किसीका निमन्त्रण स्वीकार न करना, इत्यादि जिन नियमोंका पालन मुनि कल्याण और उनके साथी मुनिगण करते थे उनसे उनका दिगम्बर जैन मुनि होना सिद्ध है† । आधुनिक विद्वान् भी यही प्रगट करतेहैं‡ ।

मुनि कल्याण ज्योतिषशास्त्रमें निष्णात थे । उन्होंने बहुत सी भविष्यद्वाणियाँकी थीं+ और सिकन्दरकी मृत्युको भी उन्होंने पहिलेसे ही घोषित कर दियाथा । इन भारतीय सन्तोंकी शिक्षाका प्रभाव यूनानियों पर विशेष पड़ाथा। यहाँ तक कि तत्कालीन डायजिनेस (Diogenes) नामक

† वीर वर्ष ७ पृ० १९६ व १९९

‡ Encyclopaedia Britannica (11th. ed.) Vol. XV p. 128. "....the term Digambara ...is referred to in the well-known Greek phrase, Gymnosophists, used already by Megasthenes, which applies very aptly to the Nigranthas (Digambara Jainas)."

+ "A calendar fragment discovered at Milet & belonging to the 2nd century B.C., gives several weather forecasts on the authority of Indian Calanus"

—QJMS., XVIII, 297

यूनानी नक्शेचाने दिगम्बरवेष धारण कियाथा ÷ । और यूनानियोंने ऐसी मूर्तियांकी बनवाईथी * ।

यूनानी लेखकोंने [illegible] दिगम्बर मुनियोंके विषयमें खूब लिखाहै । वे बताते हैं कि यह साधु नंगे रहतेथे । सर्दी-गर्मीको परीषह सहन करतेथे । जनतामें इनकी विशेष मान्यताथी । हाट बाजारमें आकर यह धर्मोपदेश देतेथे । बड़े २ शिष्ट घरोंके अंतःपुरोंमें भी ये जातेथे । राजागण इनकी विनय करते और सम्मान देतेथे । ज्योतिषके अनुसार ये लोगोंको भविष्यका फलाफलभी बतातेथे । अंजनका निमन्त्रण ये स्वीकार नहीं करतेथे । विधिपूर्वक जबसे कोई भव्य उन्हें भोजन-दान देता तो उसे वे ग्रहण कर लेतेथे × । यूनानी लेखकोंके इस वर्णन

÷ XJ, Intro p 2

* Plin XXXIV 9—JRAS Vol IX, p. 232

× Aristobulus—says "Their (Gymnosophists) spare time is spent in the market-place in respect, there being public councillors, they receive great homage etc."

Cicero (Tusc. Disput. V 27)—"What foreign land is more vast & wild than India? Yet in that nation first those who are reckoned sages spend their lifetime naked & endure the snows of Caucasus & the rage of winter without grieving & when they have committed their body to the flames, not a groan escapes them when they are burning."

Clemens Alexandrinus—"Those Indians, who

से उस समयके दिगम्बर जैन मुनियोंका महत्व स्पष्ट होजाता है। उनके द्वारा भारतका नाम विदेशोंमें भी चमकाथा। अतः हम [illegible] मुनीश्वरोंको पाकर कौन न अपनेको धन्य मानेगा ?

---

are called Semnoi (श्रमण) [illegible] naked all their lives. These practise truth make predictions about futurity and worship a kind of pyramid, beneath which they think the bones of some divinity lie buried (Stupas)."

—AI. p. 168

"St. Jerome—'Indian Gymnosophists' The king on coming to them worships them [illegible] the peace of his dominions depends according to his judgement on their prayers." —AI. p. 184.

"Every wealthy house is open. to them to the apartments of the women On entering they share the repast."—AI. p [illegible]

"When they repair to the city they disperse themselves to the market place. If they happen to meet any who carries figs or bunches of grapes they take what he bestows without giving anything in return.

शुङ्ग और आन्ध्र राज्योंमें दिगम्बर मुनि ।

"The Andhra or Satvahana rule is characterised by almost the same social features as the further south; but in point of religion they seem to have been great patrons of the Jainas & Buddhists."—S. K. Aiyangar's Ancient India, p. 94.

अन्तिम मौर्य्य सम्राट् बृहद्रथको उसके सेनापति पुष्यमित्र शुङ्गने वध कर दिया था। इस प्रकार मौर्य्य साम्राज्यका अन्त करके पुष्यमित्रने 'शुङ्ग राजवंश' की स्थापना की थी। आन्ध्र और मौर्य्य साम्राज्यमें जहाँ जैन और बौद्धधर्म उन्नतिको प्राप्त हुये थे, वहाँ शुङ्गवंशके राजत्वकालमें ब्राह्मण धर्म उन्नत अवस्थाको प्राप्त हुआ था। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि शुङ्गकालमें जैन आदि धर्मों पर इस समय कोई संकट आया हो। हम देखते हैं कि स्वयं पुष्यमित्रके राजप्रासादके सन्निकट अग्रराज द्वारा लाई गई 'कलिङ्ग जिन की मूर्ति' सुरक्षित रही थी। इस अवस्थामें यह नहीं कहा जासकता कि इस समय दिगम्बर जैनधर्मको विकट बाधा सहनी पड़ी थी।

उसपर शुङ्ग राजगण अधिक समय तक शासनाधिकारीभी न रहे। भारतके पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और

पश्चिमकी ओर से यवन राजाओंने अधिकार जमाना प्रारंभ करदिया और मगध तथा मध्यभारत पर जैनसम्राट् खारवेल तथा आन्ध्रराजाओंके आक्रमण होने लगे। खारवेलकी मगध विजयमें आन्ध्रवंशी राजाओंने उसका साथ दिया था*। मगध पर आन्ध्र राजाओंका अधिकार होगया! इन राजाओं के उद्योगसे जैनधर्म फिर एक बार चमक उठा।

आन्ध्रवंशी राजाओंमें हाल, पुलुमायि आदि जैनधर्म प्रेमी कहे गये हैं†। इन्होंने दिगम्बर जैन मुनियोंको विहार और धर्मप्रचार करनेकी सुविधा प्रदानकी प्रतीत होती है। उज्जैनीके प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्यभी इसी वंशसे सम्बन्धित बताये जाते हैं। वह शैव थे, परन्तु उपरान्त एक दिगम्बर जैनाचार्यके उपदेशसे जैन हो गये थे‡।

ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दिमें एक भारतीय राजाका सम्बन्ध रोमके बादशाह ऑगस्टससे था। उन्होंने उस बादशाहके लिये भेंट भेजी थी। जो श्रमण उस भेंटको लेगये थे,

---

*"In the decadance that followed the death of Asoka, the Andhras seem to have had their own share and they may possibly have helped Kharvela of Kalinga, when he invaded Magadha in the middle of the 2nd century B. C When the Kanvas were overthrown the Andhras extend their power northwards & occupy Magadha." —SAI., pp 15-16.

† JBORS. I, 76–118 & CHI., I p 532

‡ Allahabad university Studies, pt. II pp 113-147

मुनियोंके साथ शास्त्रार्थ हुआ था।† सारांशतः उस समय भी दिगम्बर मुनि इतने महत्वशाली थे कि वे विदेशियोंका भी ध्यान आकृष्ट करनेको समर्थ थे।

[१५]

यवन-क्षत्रप आदि राजागण तथा दिगम्बर मुनि !

"About the second century B. C. when the Greeks had occupied a fair portion of western India, Jainism appears to have made its way amongst them and the founder of the sect appears also to have been held in high esteem by the Indo-Greeks, as is apparent from an account given in the Milinda Panho." —HG., p. 78.

मौर्यों के उपरान्त भारतके पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, पञ्जाब, मालवा आदि प्रदेशों पर यूनानी आदि विदेशियोंका अधिकार होगया था। इन विदेशी लोगोंमें भी

---

†"Apollonius of Tyana travelled with Damus. Born about 4 B. C., he came to explore the wonders of India.........He was a Pythogorian philosopher & met Iarchas at Taxila and disputed with Indian Gymnosophists. (Nigranthas ?)"

—QJMS., XVIII, pp. 305-306

पर था। उस समयके बने हुये जैन ऋषियोंके स्मारक-रूप स्तूप आजभी तक्षशिलामें भग्नावशेष है।+

शक राजा कनिष्क, हुविष्क और वासुदेवके राजकाल में भी जैनधर्म उन्नत दशामें रहा था। मथुरा उस समय प्रधान जैन केन्द्र था। अनेक निर्ग्रन्थ साधु वहाँ विचरते थे। उन महा साधुओं की पूजा राजपुत्र और राजकन्यायें तथा साधारण जनसमुदाय किया करते थे।×

क्षत्रप नहपानभी जैनधर्म प्रेमी प्रतीत होता है। उसका राज्य गुजरातसे मालवा तक विस्तृत था। जैन साहित्यमें उसका उल्लेख नरवाहन और नहवाण रूपमें हुआ मिलता है। नहपान ही संभवतः भूतबलि नामक दिगम्बर जैनाचार्य हुये थे, जिन्होंने "षट्खण्डागम सूत्र" की रचना की थी।÷

क्षत्रप नहपानके अतिरिक्त क्षत्रप जयदमनका पुत्र रुद्र-सिंहका भी जैनधर्मानुयुक्त होना संभव है। जूनागढ़की 'अपर-कोट' की गुफाओंमें इसका लेख मिला है, जिससे उसका जैन-धर्मसे होना अनुमान किया जाता है। ये गुफायें जैनमुनियोंके उपयोगमें आती थीं।●

+ AGT, pp. 76—80

× "Another locality in which the Jainas seem to have been firmly established from the middle of the 2nd Century B. C. onwards was Mathura in the old kingdom of Curasena."

—CHI, I, p 167 & see JOAM

÷ सरस्वती, भा० २६ अंक २ पृ० [illegible]

● IA, XX, 163 ff.

इन उल्लेखोंसे यह स्पष्ट है कि उपरोक्त विदेशी लोगों में धर्मप्रचार करने के लिये दिगम्बर मुनि पहुंचे थे और उन्हों ने उनलोगोंके निकट सम्मान पाया था।

[१६]

सम्राट् ऐलखारवेल आदि कलिंग नृप और दिगम्बर मुनियोंका उत्कर्ष।

"नन्दराज नीतानि कालिंग-जिनम्-संनिवेसं ...... गहरतनान पडिहारेहि अङ्गमागध वसुं नेयाति।"

(१२ वीं पंक्ति)

"सुकति-समण-सुविहितानुं च सवदिसानुं ञानिनम् तपसि-इसिनं संघियनं अरहत निसीदिया समीपे पभारे वरा-कार—समुथपायिहि अनेकयोजनाहिताहि प सि ओ सिलाहि सिंहपथ रानि सिंधुडाय निसयानि .... घंटा (ल) क(तो) चतरे च वेडूरियगभे थंभे पतिठापयति।" (१४-१६ वीं पंक्ति)

—हाथीगुम्फा शिलालेख।

कलिङ्गदेशमें पहले तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेवके एक पुत्रने पहले पहले राज्य किया था। जब सर्वज्ञ होकर तीर्थङ्कर ऋषभने आर्यखण्डमें विहार किया तो वह कलिङ्गमें पहुंचे थे। उनके धर्मोपदेशसे प्रभावित होकर तत्कालीन कलिङ्ग राज अपने पुत्रको राज्य देकर दिगंबरमुनि होगये थे। बस,

१ हरिवंशपुराण स० ३ श्लो० ३-७ व स० ११ श्लो० ६४-७१

कलिङ्गमें दिगम्बर-मुनियोंका सद्भाव बहुत प्राचीन कालसे है।

राजा दशरथ अथवा जशरथके पुत्र पांचसौ साथियों सहित दिगम्बर मुनि होकर कलिङ्गदेशसे ही मुक्त हुयेथे। तथा वह पवित्र कोटिशिलातीर्थ उसी कलिङ्गदेशमें है, जिसको श्रीराम-लक्ष्मणने उठाकर अपना बाहुबल प्रगट किया था और जिस पर से एक करोड़ दिगम्बर-मुनि निर्वाणको प्राप्त हुयेथे†। सारांशतः एक अतीव प्राचीन कालसे कलिङ्ग देश दिगम्बर-मुनियोंके पवित्र-चरण-कमलोंसे अलंकृत होचुका है!

इक्ष्वाकुवंशके कोशलदेशीय क्षत्रिय राजाओंके उपरान्त कलिङ्गमें हरिवंशी क्षत्रियोंने राज्य कियाथा। भगवान महावीरने सर्वज्ञ होकर जब कलिङ्गमें आकर धर्मोपदेश दिया तो उस समय कलिङ्गके जितशत्रु नामक राजा दिगम्बर मुनि हो गये और उनके साथ और भी अनेक दिगम्बर मुनि हुयेथे‡।

उपरान्त दक्षिण कोशलवर्ती चेदिवंशके एक महापुरुषने कलिङ्ग पर अधिकार जमा लियाथा+। ईस्वी पूर्व द्वितीय शताब्दिमें इस वंशका ऐल खारवेल नामक राजा अपने भुजविक्रम, प्रताप और धर्म कार्योंके लिये प्रसिद्धथा। यह जैनधर्मका दृढ़ उपासकथा। उसने सारे भारतको दिग्विजय

---

† "जसरह णरिंद तणया पंचसयाइं च कलिंग देसम्मि।
कोडिसिला कोडि मुणि णिव्वाण गया णमो तेसिम ॥१८॥"
—निर्वाण-काण्ड गाथा

‡ हरिवंशपुराण (कलकत्ता संस्करण) पृ० ६३३

\+ JBORS. Vol III pp. 434-484.

पुत्रोंने मिलकर जिनवाणीका उद्धार किया था तथा सम्राट् खारवेलके सदुद्योगसे वे जैनधर्म प्रचार करनेमें सफलमनोरथ हुये थे। यही कारण है कि उस समय प्रायः सारे भारतमें जैनधर्म फैला हुआ था। यहाँ तक कि विदेशियोंमें भी उसका प्रचार होगया था, जैसेकि पूर्व परिच्छेदमें लिखा जा चुका है। अतएव यह स्पष्ट है कि ऐल खारवेलके राजकालमें दिगंबर मुनियोंका महती उत्कर्ष हुआ था।

ऐल खारवेलके बाद उनके पुत्र कुदेपश्री खर महामेघवाहन कलिङ्गके राजा हुए थे। वहभी जैनधर्मानुयायी थे ‡। उनके बादभी एक दीर्घ समय तक कलिङ्गमें जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहा था। बौद्धग्रन्थ 'दाठावंसो' से ज्ञात है कि कलिङ्गके राजाओंमें म० बुद्धके समयसे जैनधर्मका प्रचार था। गौतमबुद्धके स्वर्गवासी होनेके बाद बौद्धभिक्षु खेमने कलिङ्गके राजा ब्रह्मदत्तको बौद्धधर्ममें दीक्षित किया था। ब्रह्मदत्तका पुत्र काशीराज और पौत्र सुनन्दभी बौद्ध रहे थे+। किन्तु उप-

‡ JBORS, III p. 505.

+ तस्स धातु ततो खेमो अरहा अहितं गतः।
दन्तपुरे कलिङ्गस्स ब्रह्मदत्तस्स राजिनो ॥४०॥
देसयित्वान सो धम्मं भेत्वा सब्ब कुदिट्ठियो।
पसादं तं पवढ्ढेसि कम्मासिरजनम्ते ॥४२॥
× × ×
ब्रह्मदत्तो ततो तस्स कासिराज सुतो सुतो।
धम्मं सच्च समाकर्ण्णं सीळसंग्गमप्पमुदि ॥६६॥
× × ×

की कही जा सकती है। और इससे प्रगट है कि उस समय तक दिगम्बर मुनियोंको प्रधानता कलिङ्ग-अङ्ग-बङ्ग और मगधमें विद्यमान् थी। दिगम्बर मुनियोंको राज्याश्रय मिला हुआ था।

कुमारीपर्वत परके शिलालेखोंके पढ़नेसे प्रगट है कि कलिङ्गमें जैनधर्म दसवीं शताब्दि तक उन्नतावस्था पर था। उस समय वहाँ पर दिगम्बर जैनमुनियोंके विविध संघ विद्यमान् थे, जिनमें आचार्य यशनन्दि, आचार्य कुलचन्द्र तथा आचार्य शुभचन्द्र मुख्य साधु थे।*

इस प्रकार कलिङ्गमें दिगम्बर जैनधर्मका बाहुल्य एक अतीव प्राचीनकालसे रहा है और वहाँ पर आजभी सराक लोग एक बड़ी संख्या में हैं, जो प्राचीन श्रावक हैं†। उनका अस्तित्व इस बातका प्रमाण है कि कलिङ्गमें जैनधर्मकी प्रधानता आधुनिक समय तक विद्यमान रही थी।

[illegible] निगत्य ते सर्वे [illegible] ।
[illegible] इत्यादि'
—[illegible]०, पृ० ११-१४

* बंबिओ जैस्मा०, पृ० ३७-३९
† बंबिओ जैस्मा०, १०२-१०३

[१७]

गुप्त-साम्राज्यमें दिगम्बर-मुनि !

"The capital of the Gupta emperors became the centre of Brahmanical culture, but the masses followed the religious traditions of their fore-fathers, and Buddhist & Jain monasteries continued to be public schools and universities for the greater part of India."

—E. B. Havell, HARI, p. 150.

यद्यपि गुप्तवंशके राज्यकालमें ब्राह्मण धर्मकी उन्नति हुई थी, किन्तु जन-साधारणमें अब भी जैन और बौद्ध धर्मोंकाही प्रचार था। दिगम्बर जैन मुनिगण ग्राम-ग्राम विचर कर जनताका कल्याण कर रहे थे और दिगम्बर उपाध्याय जैन-विद्यापीठोंके द्वारा ज्ञान दान करते थे। गुप्त कालमें मथुरा, उज्जैन, श्रावस्ती, राजगृह आदि स्थान जैनधर्मके केन्द्र थे। इन स्थानों पर दिगंबर जैन साधुओंके संघ विद्यमान थे। गुप्त-सम्राट श्रमण साधुओंसे द्वेष नहीं रखते थे,* तथापि उनका वाद ब्राह्मण विद्वानोंके साथ कराकर सुनना उन्हें पसन्द था।

श्री सिद्धसेनदिवाकरके उदाहरणसे पता चलता है कि

---

* भाइ०, पृ० ६१।

'इस समय शास्त्रार्थ पद्धति और आकर्षक शान्तिवृत्तिका लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। निर्ग्रन्थ अकेले दुकेले ही ऐसे स्थलों पर आ पहुंचते थे और ब्राह्मणादि प्रतिवादी विस्तृत शिष्य समूह और जनसमुदाय सहित राजसी ठाठ-बाटके साथ पेश आते थे; तो भी जो यश निर्ग्रन्थोंको मिलता था वह उन प्रतिवादियोंको अप्राप्य था।'†

बङ्गालमें पहाड़पुर नामक स्थान दिगंबर जैन संघका केन्द्र था। वहांके दिगंबर मुनि प्रसिद्ध थे।‡

गुप्तवंशमें चन्द्रगुप्त द्वितीय प्रतापी राजा था। उसने 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारणकी थी। विद्वानोंका कथन है कि इसीकी राज-सभामें निम्नलिखित विद्वान् थे+ :—

'धन्वन्तरिक्षपणकोऽमरसिंहशंकुवेतालभट्टघटखर्परका-लिदासाः। ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥'

इन विद्वानोंमें 'क्षपणक' नामका विद्वान् एक दिगंबर मुनि था। आधुनिक विद्वान् उन्हें सिद्धसेन नामक दिगम्बर जैनाचार्य प्रकट करते हैं×। जैनशास्त्र भी उनका समर्थन करते हैं। उससे प्रकट है कि श्री सिद्धसेनने 'महाकाली' के मन्दिर

---

† जैहि० भा० १४ पृ० १९६
‡ IHQ VII. 441
+ ज्यो०, १११ ।
× स्वा० चरित पृ० १३३-१४६ ।

१०. श्री मुनि रत्ननन्दी ... सन् ५०४ में आचार्य हुये।
११. „ „ माणिक्यनन्दी ... ५२८ „ „
१२. „ „ मेघचन्द्र ... ५३४ „ „
१३. „ „ शान्तिकीर्ति प्रथम ५६० „ „
१४. „ „ मेरुकीर्ति ... ५८५ „ *

इनके बाद जो दिगम्बर जैनाचार्य हुये, उन्होंने भद्दल-पुर (मालवा) से हटाकर जैनसंघका केन्द्र उज्जैनमें बना दिया †। इससे भी स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके निकट जैनधर्मको आश्रय मिला था। उसी समय चीनी-यात्री फाह्यान भारतमें आया था। उसने मथुराके उपरान्त मध्यदेशमें [illegible] पाखण्डोंका प्रचार लिखा है। वह कहता है कि "ये सब लोक और परलोक मानते हैं। उनके साधु-संघ हैं। वे भिक्षा करते हैं, केवल भिक्षापात्र नहीं रखते। सब नानारूपसे धर्मानुष्ठान करते हैं ‡।" दिगम्बर-मुनियोंके पास भिक्षापात्र नहीं होता—वे पाणिपात्र भोजी और उनके संघ होते हैं। तथा वे अहिंसा धर्मका उपदेश मुख्यतासे देते हैं। फाह्यानभी कहता है कि "सारे देशमें सिवाय चाण्डालके कोई अधिवासी न जीवहिंसा करता है, न मद्य पीता है और न लहसुन खाता है।"......न कहीं

* पट्टावली जैहि०, भाग ६ अङ्क ७-८ पृ० २९-३० व IA, XX 351-352
† IA, XX. 352
‡ फाह्यान पृ० ३१।

देवने ईश्वरवासक गांव और २५ दीनारोंका दान किया। [illegible] दान काकनादोटके जैन विहारमें पाँच जैनभिक्षुओंके भोजनके लिये और रत्नगृहमें दीपक जलानेके लिये दिया गयाथा। यह आमरकार्द्दव चन्द्रगुप्तके यहाँ किसी सैनिकपद पर नियुक्त था+। यहभी जैनोत्कर्ष का द्योतक है।

राजगृह परकी पाषाण मूर्तियोंका उल्लेख करताहै*। वहांकी सुमगगुफामें तीसरी या चौथी शताब्दिका एक लेख मिलाहै जिससे प्रगटहै कि मुनिसंघने मुनि वैरदेवको आचार्य पद पर नियुक्त कियाथा‡। राजगृहमें गुप्तकालकी अनेक दिगम्बर मूर्तियांभीहैं+।

सारांशतः गुप्तकालमें दिगम्बर मुनियोंका बाहुल्य था और वे सारे देशमें घूम २ कर धर्मोद्योत कर रहेथे।

+ आमात्य०, भाग २ पृ० २६१

* "Here also the Nigantha made a pit with fire in it and poisoned the food of which he invited Buddha to partake. (The Niganthas were ascetics who went naked)" —Fa-Hian, Beal, pp. 110-113 यह उल्लेख साम्प्रदायिक द्वेष का द्योतक है।

‡ वीरकी जैनशा०, पृ० [illegible]

+ "Report on the Ancient Jain Remains on the hills of Rajgir" submitted to the Patna Court by R. B. Ramprasad chanda. B. A. Ch. IV p. 30. (Jain Images of the Gupta & Pala period at Rajgir)

[१८]

हर्षवर्द्धन् तथा हुएनसांगके समयमें दिगम्बर-मुनि !

"बौद्धों और जैनियोंकी भी.. . संख्या बहुत अधिक थी। . . ..बहुतसे भारतीय राजा भी इनके अनुयायी थे। इनके धार्मिक-सिद्धान्त और नीति-शिक्षाओंने तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव डाले हुये थे। इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाजमें साधुओं, तपस्वियों, भिक्षुओं और यतियोंका एक बड़ा भारी समुदाय था, जो उस समयके समाजमें विशेष महत्व रखता था।.... (हिन्दुओं में) बहुतसे साधु अपने निश्चित स्थानों पर बैठे हुये पठन-पाठन करते थे, जिनके पास भक्त लोग उपदेश आदि सुनने आया करते थे। बहुतसे साधु शहरों व गांवोंमें घूम घूम कर लोगों को उपदेश एवं शिक्षा दिया करते थे। यही हाल बौद्ध भिक्षुओं और जैन साधुओंका भी था। .. .. साधारणतः लोगोंके जीवनको नैतिक एवं धार्मिक बनानेमें इन साधुओं, यतियों और भिक्षुओंका बड़ा भारी भाग था।"

—हरिश्चन्द्र विद्यालङ्कार. ‡

गुप्त-साम्राज्यके नष्ट होने पर उत्तर-भारतका शासन एक हाथोंमें न रहा। परिणाम यह हुआ कि शीघ्र ही हूण जातिके लोगोंने भारत पर आक्रमण करके उस पर

‡ हर्षकालीन भारत—"सत्ययुग" वर्ष १ खण्ड १ पृ० ३०।

अधिकार जमा लिया। उनका राज्य थोड़े वर्षोंके लिये थोड़ा बहुत हानिकर हुआ; किन्तु यशोधर्मन् राजाने संगठन करके उन्हें परास्त कर दिया। इसके बाद हर्षवर्द्धन् नामक सम्राट् एक ऐसे राजा मिलते हैं जिन्होंने सारे उत्तर-भारतमें प्रायः अपना अधिकार जमा लिया था और दक्षिण-भारतको हथियानेकी भी जिन्होंने कोशिश की थी। इनके राजकालमें प्रजाने संतोषकी सांस ली थी और वह धर्म-कर्मकी बातोंकी ओर ध्यान देने लगी थी।

गुप्तकालसे ही ब्राह्मण-धर्मका पुनरुत्थान होने लगा था और इस समय भी उसकी प्रामुख्यता थी; किन्तु जैन और बौद्धधर्म भी प्रतिभाशाली थे। धार्मिक जागृतिका वह उन्नत काल था। गुप्तकालसे जैन, बौद्ध और ब्राह्मण विद्वानोंमें वाद और शास्त्रार्थ होना आरम्भ होगये थे। हर्षकालमें उनको यह सम्मानरूप मिला कि सभाओंमें विद्वान् ही सर्व श्रेष्ठपुरुष गिना जाने लगा*। इन विद्वानोंमें दिगम्बर-मुनियोंका भी उल्लेख था। सम्राट् हर्षके राजकवि बाणने अपने ग्रन्थों में उनका उल्लेख किया है। [illegible] लिखता है कि "राजा जब गहन जङ्गल में जा पहुँचा तो वहाँ उसने अनेक तरहके तपस्वी देखे। उन में नग्न (दिगम्बर) आर्हत (जैन) साधुभी थे‡।" हर्षने अपने महासम्मेलनमें उन्हें शास्त्रार्थके लिये बुलाया था और वहएक

* माडृ०, पृ० १०१—१०४।
‡ हिस्ट्री०, पृ० २१

और यहीं सिंहपुरमें उसने कुछ जैन मुनियोंको पाया था*। इसके उपरान्त पंजाबके और मथुरा, स्थानेश्वर, ब्रह्मपुर, अहिच्छेत्र, कपिथ, कन्नौज, अयोध्या, प्रयाग, कौशाम्बी, बनारस, श्रावस्ती, इत्यादि मध्यदेशवर्ती नगरोंमें यद्यपि उसने दिगम्बर मुनियोंका प्रथक उल्लेख नहीं किया है, परन्तु एक साथ सब प्रकारके साधुओं का उल्लेख करके उसने उनके अस्तित्वको इन नगरोंमें प्रकट कर दिया है। मथुराके सम्बंध में वह लिखता है कि "पांच देवमन्दिर भी हैं, जिनमें सब प्रकारके साधु उपासना करते हैं।†" स्थानेश्वरके विषयमें उसने लिखा है कि "कई सौ देवमन्दिर बने हैं, जिनमें नाना जातिके अगणित भिन्न धर्मावलम्बी उपासना करते हैं‡।" ऐसे ही उल्लेख अन्य नगरोंके सम्बन्धमें उसने किये हैं।

राजगृहके वर्णनमें हुएनत्सांगने लिखा है कि "विपुल पहाड़ीकी चोटी पर एक स्तूप उस स्थानमें है, जहां प्राचीनकालमें तथागत भगवानने धर्मकी पुनरावृत्ति की थी। आजकल बहुतसे निर्ग्रन्थ लोग (जो नङ्गे रहते हैं) इस स्थान पर

---

selves by leaving their bodies naked [illegible] pulling out their hair. Their skin is all cracked, their feet are hard & chapped like rotting trees."

—(St. Julien, Vienna, p224).

* हुएन०, पृष्ठ १४३
† हुएन०, पृ० १८८
‡ हुएन०, पृ० १८६

दक्षिण कोशलमें वह विधर्मी और बौद्ध दोनोंको बताता है। आन्ध्रमें भी विरोधियोंका अस्तित्व वह प्रगट करता है।+

चोलदेशमें वह बहुतसे निर्ग्रन्थ लोग बताता है।× द्राविडके वर्णनमें वह कहता है कि "कोई अस्सी देवमन्दिर और असंख्य विरोधी हैं, जिनको निर्ग्रन्थ कहते हैं।" +

मालकूट (मलयदेश) में वह बताता है कि "कई सौ देव-मन्दिर और असंख्य विरोधी हैं, जिनमें अधिकतर निर्ग्रन्थ लोग हैं।" †

इस प्रकार हुएनत्सांग के भ्रमण-वृत्तान्तसे उस समय प्रायः सारे भारतवर्षमें दिगम्बर जैन मुनि निर्बाध विहार और धर्मप्रचार करते हुये मिलते हैं।

+ हुएन०, पृ० २२६-२३०
× हुएन०, पृ० २३०
+ हुएन०, पृ० २३१
† हुएन०, पृ० २५४

श्रावस्ती, मथुरा, कहाऊंखेड़ा, देवगढ़, बारानगर, उज्जैन आदि स्थान उस समयभी जैनकेन्द्र बने हुयेथे। ग्यारहवीं शताब्दि तक श्रावस्तीमें जैनधर्म राष्ट्रधर्म रहाथा। वहां का अन्तिमराजा सुहृद्ध्वजथा‡। उसके संरक्षणमें दिगम्बर मुनियोंका लोककल्याणमें निरत रहना स्वाभाविक है।

बनारस के राजा भीमसेन जैनधर्मानुयायीथे और वह अन्तमें पिहिताश्रव नामक जैनमुनि हुयेथे+।

मथुरामें रत्नकेतु नामक राजा जैनधर्मका भक्त था। वह अपने भाई सुधर्मा सहित नित्य जिनपूजा किया करता था। आख़िर सुधर्माको राज्य देकर वह जैनमुनि होगयाथा।×

सूर्यपुर (ज़िला आगरा) का राजा जितशत्रुभी जैनीथा वह बड़े २ विद्वानोंका आदर करताथा। अन्तमें वह जैनमुनि होगया था और शान्तिकीर्तिके नामसे प्रसिद्ध हुआथा÷।

मालवा के परमार राजा और दिगम्बर मुनि

मालवाके परमारवंशी राजाओंमें मुञ्ज और भोज अपनी विद्यारसिकताके लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी राजधानी धारानगरी विद्याकी केन्द्रथी। मुञ्जके दरबारमें धनपाल, पद्मगुप्त, धनञ्जय, हलायुध आदि अनेक

‡ संप्राजैस्मा०, पृ० ६२
+ जैन० पृ० २४२
× पूर्व०
÷ पूर्व०, पृ० २४३

चार्य श्री सोमदेव सूरि श्री अमितगति आचार्यके समकालीन थे। उस समय इन दिगम्बराचार्यों द्वारा दिगम्बर धर्मकी खूब प्रभावना होरही थी।†

सम्राट् भोज और दिगम्बर मुनि

गुप्तके समान राजा भोजके दरबारमें भी जैनियोंको विशेष सम्मान प्राप्त था। भोज स्वयं शैव था, परन्तु 'वह जैनों और हिन्दुओंके शास्त्रार्थोंका बड़ा अनुरागी था।' श्री प्रभाचन्द्राचार्यका उसने बड़ा आदर किया था। दिगम्बर जैनाचार्य श्री शान्तिसेनने भोजकी सभामें सैकड़ों विद्वानोंसे वाद करके उन्हें परास्त किया था।‡

एक कवि कालिदास राजा भोजके दरबारमें भी थे। कहतेहैं कि उनकी स्पर्द्धा दिगम्बराचार्य श्रीमानतुङ्गजीसे थी। उन्हींके बहकाने पर राजा भोजने मानतुङ्गाचार्यको अड़तालीस कोठोंके भीतर बन्द कर दिया था, किन्तु श्री 'भक्तामर स्तोत्र' की रचना करते हुये वह आचार्य अपने योगबलसे बन्धनमुक्त हो गए थे। इस घटनासे प्रभावित होकर कहते हैं, राजा भोज जैनधर्ममें दीक्षित होगये थे+; किन्तु इस घटनाका समर्थन किसी अन्य स्रोतसे नहीं होता।

श्री भावदेवके अनुसार 'द्रव्यसंग्रह' के कर्ता श्री नेमि-

---

† दिग०, पृ० १६५
‡ मप्राजैस्मा०, भाग १ पृष्ठ १९०-१९१
+ भक्तामरकथा—जैन०, पृ० २४६

श्वेताम्बर ग्रन्थ "चतुर्विंशति प्रबन्ध" में लिखा है कि उज्जैनीमें विशालकीर्ति नामक दिगम्बराचार्य के शिष्य मदन-कीर्ति नामके दिगंबर साधु थे। उन्होंने वादियोंको पराजित करके 'महाप्रामाणिक' पदवी पाई थी और कर्णाटक देशमें जा कर विजयपुर नरेश कुन्तिभोजके दरबारमें आदर पाया था और अनेक विद्वानोंको पराजित किया था, किन्तु अन्तमें वह मुनिपदसे भ्रष्ट होगए थे।+

गुजरातके शासक और दिगम्बर मुनि

मालवाके अनुरूप गुजरातभी दिगम्बर जैन मुनियोंका केन्द्र था। अङ्कलेश्वरमें भूतबलि और पुष्पदन्ताचार्यने दिगम्बर आगम ग्रन्थोंकी रचनाकी थी। गिरिनगरके निकटकी गुफाओंमें दिगंबर मुनियोंका बहु प्राचीन कालसे रहना था। ऊर्जयन्तजी दिगंबर जैनोंका केन्द्र था।

गुजरातमें चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि राजाओंके समयमें दिगंबर जैनधर्म उन्नतशील था। सोलंकियोंकी राजधानी अणहिलपुरपाटनमें अनेक दिगंबर मुनि थे। श्रीचन्द्र मुनिने वहीं ग्रन्थ रचनाकी थी×। योगचन्द्र मुनि÷ और मुनि कनकामरजी प्रभृत गुजरातमें हुए थे। ईडरके दिगम्बरसाधु प्रसिद्ध थे।

+जैहि०, भा० ११ पृ० ८८
× वीर वर्ष ३ पृ० ११०
÷ वीर, वर्ष ३ पृ० ६३८

सोलंकी सिद्धराजने एक वाद सभा कराई थी; जिस में भाग लेनेके लिये कर्णाटक देशसे कुमुदचन्द्र नामक एक दिगम्बर जैनाचार्य आये थे। दिगम्बराचार्य नग्न ही पाटन पहुँचे थे। सिद्धराजने उनका बड़ा आदर किया था। देवसूरि नामक श्वेताम्बराचार्यसे उनका वाद हुआ था*। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि उस समयतो दिगंबरजैनोंका गुजरातमें इतना महत्व था कि शासक राजकुलका भी ध्यान उनकी ओर आकृष्ट हुआ था।

दिगम्बराचार्य ज्ञानभूषण

गुर्जर, सौराष्ट्र आदि देशोंमें जिनधर्मका प्रचार श्री दिगम्बर भट्टारक ज्ञानभूषणजी द्वारा हुआ था। आभीरदेशमें उन्होंने पेशकपद धारण किया था और वाग्वरदेशमें महाव्रतोंको उन्होंने अङ्गीकार किया था। विहार करते हुये वह कर्णाटक, तौलव, तिलंग, द्राविड़, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, रायदेश, मेदपाट, मालव, मेवात, कुरुजांगल, तुरव, विराटदेश, नमियाडदेश, टग, राट, नाग, चोल आदि देशोंमें विचरे थे। तौलवदेशके महावादीश्वर विद्वज्जनों और चक्रवर्तियोंके मध्य उन्होंने प्रतिष्ठा पाई थी। तुरवदेशमें षट्दर्शन के ज्ञाताओंका गर्व उन्होंने नष्ट किया था। नमियाड़ देशमें जिनधर्म प्रचारके लिए सौ हज़ार उपदेशकोंको उन्होंने नियुक्त किया था। दिल्ली पट्टके वह सिंहासनाधीश थे। श्रीदेवराय-

* जिलो०, भा० ३ पृ० १०८

स्वसमय तथा परसमयके शास्त्रार्थको जानने वाले और महाव्रत अङ्गीकार करने वाले थे।"†

बारानगर का दिगम्बर संघ

उज्जैनके उपरान्त दिगम्बर मुनियोंका केन्द्र विन्ध्याचल पर्वतके निकट स्थित बारानगर नामक स्थान होगया था‡। यहां एक प्राचीनकालसे ही जैनधर्मका गढ़ था। आठवीं या नवीं शताब्दिमें यहाँ श्री पद्मनन्दि मुनिने 'जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति' की रचनाकी थी। इस ग्रन्थ की प्रशस्तिमें लिखा है कि "बारानगरमें शान्ति नामक राजा का राज्य था। वह नगर धनधान्यसे परिपूर्ण था। सम्यग्दृष्टि जनोंसे, मुनियोंके समूहसे और जैनमन्दिरोंसे विभूषित था। राजा शान्तिजिनशासनवत्सल,वीर और नरपति संपूजितथा। श्री पद्मनन्दिजी ने अपने गुरु व अन्यरूप इन दिगम्बर मुनियों

---

† जैसिभा०, भा० १ कि० ४ पृ० ११-१० :—

"पंचाचारसमग्र षड्जीवदयापरा, मदविगतराग विगतमिथ्यात्व, सन्देहविनाशकान्यपञ्चाश्रयमुक्त, गिरिकन्दरे चातुर्मासे भव्यजीवसमीपेसुगुणगणसमूहस्था, मदकृतदर्शनं, सारितानेक शास्त्रगाथा, निर्मलमनेकोत्तमधर्मकार कल्पनिर्मलमनसमपारोपितसमाधयो, गौडादिगतमः सूर्य, कलिंगादिवनदहनाग्नि, कर्णाटकादिपक्षपातभञ्जनसमर्थं, पूर्वंवादि मत्तमातङ्गमृगेन्द्र, चौलादिविशिष्टजनघोर, सुमेरु वादिसिन्धुकुम्भोद्भव, मालवपादिमस्तकशूल, जिनभेदरहितं सर्वोत्कृष्टचारित्रवतां, आगमसकलस्वसमयपरसमय शास्त्रार्थज्ञानां, महाव्रतमङ्गीकृतानाम् ।"

‡ IA., XX. 353—354.

माघनन्दि	...	...	सन् ११०३
देवनन्दि	...	...	,, १११०
विद्याचन्द्र	...	...	,, १११३
सूरचन्द्र	...	...	,, १११६
माघनन्दि	...	...	,, ११४७
ज्ञाननन्दि	...	...	,, ११४९
गङ्गकीर्ति	...	...	,, ११४२

इन दिगम्बराचार्यों द्वारा उस समय मध्यदेशमें जैन धर्मका खूब प्रचार हुआ था।

वि० सं० १०२१ में मल्लू नामक राजाकी सभामें दिगंबराचार्यका वाद एक श्वेताम्बर आचार्यसे हुआ था ‡।

चन्देल राजा में दिगम्बर मुनि

चन्देल राजा मदनवर्मदेव के समय (११३०–११६५ ई०) में दिगम्बर धर्म उन्नतरूप रहा था + । खजुराहोमें संठाईके मन्दिर वाले शिलालेखसे उस समय दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रका पता चलता है।×

तेरहवीं शताब्दिमें अनन्त वीर्य नामक दिगम्बराचार्य प्रसिद्ध नैयायिक थे। उन्होंने वादियोंको परास्त किया था ÷ । इसी समयके लगभग एक शुभकीर्ति नामक महामुनि विशुद्ध

‡ ADJB, p. 45
+ विको० भा० ७ पृ० १६२।
× विको०, भा० ५ पृ० ६०।
÷ ADJB., p. 86

इसी शताब्दि तकका शिलालेख दिगम्बर धर्मकी प्रधानता का द्योतक है।

ग्वालियरमें कच्छपघाट (कछवाहे) और पड़िहार राजाओंके समयमें दिगम्बर जैनधर्म उन्नत रहा था। ग्वालियर किलेकी नग्नमूर्तियां इस व्यवस्थाकी साक्षी हैं। बाबरशाह के बाद दिगंबर मुनियोंका केन्द्रस्थान ग्वालियर हुआ था। और यहांके दिगम्बर मुनियोंमें सं० १२९६ के आचार्य रत्नकीर्ति प्रसिद्ध थे। वह स्याद्वादविद्याके समुद्र, बाल ब्रह्मचारी, तपस्वी और दयालु थे। उनके शिष्य नाना देशोंमें फैले हुये थे।+

अजमेरके प्रसिद्ध हिन्दू शासक पृथ्वीराजभी दिगंबर जैनधर्मके आश्रयदाता थे।

बङ्गालमें भी दिगम्बर धर्म इस समय मौजूद था, यह बात जैन कथाओंसे स्पष्ट है। 'आराधनाकथा' में चम्पापुरका राजा धर्म जैनी लिखा है। भ० महावीरकी जन्मनगरी विशाला का राजा लोकपाल जैनी था। पटनाका राजा धात्रीवाहन श्रीविमलवाहन नामक मुनिके उपदेशसे जैनी हुआ था। गौड़देश का राजा प्रजापति बौद्धधर्मी था, परन्तु जैनसाधु मतिसागरकी वादशक्ति पर मुग्ध होकर प्रजासहित जैनी हुआ था×। इस समयका जो जैन शिल्प बङ्गाल आदि प्रांतोंमें मिलता है, उस से उक्त जैन कथाओंका समर्थन होता है। आजतक बङ्गाल में

+ जैहि०, भा० ६ अङ्क ७-८ पृ० २९।

× जैसा०, पृ० २३०—२३३

प्राचीन श्रावक 'मराठ' लोगोंमें अर्हत् संस्थाका मिलना वहां पर एक समय दिगम्बर जैनधर्मको प्रधानताका द्योतक है।

इस प्रकार मध्यकालके हिन्दू राज्योंमें प्रायः समग्र उत्तर भारतमें दि० मुनियोंका विहार और धर्मप्रचार होता था। आठवीं शताब्दिके उपरान्त जब दक्षिण भारतमें दिगम्बरजैनों के साथ अत्याचार होने लगा, तो उन्होंने अपना केन्द्रस्थान उत्तर भारतकी ओर बढ़ाना शुरू कर दिया था। उज्जैन, बारा-नगर, ग्वालियर आदि स्थानोंका जैनकेन्द्र होना, इसही बात का द्योतक है। ईस्वी ९-१० शताब्दिमें जब अरबका सुलेमान नामक यात्री भारतमें आया तो उसने भी नग्न साधुओं को एक बड़ी संख्यामें देखा था*। सारांशतः मध्यकालीन हिन्दूकालमें दिगम्बर मुनियोंका भारतमें बाहुल्य था।

---

* "In India there are persons, who, in accordance with their profession, wander in the woods and mountains and rarely communicate with the rest of mankind.........Some of them go about naked."

—Suleman of Arab, Elliot, I. p. 6

[२०]

भारतीय संस्कृत-साहित्य में दिगम्बर मुनि।

"पाणिः पात्रं पवित्रं भ्रमणपरिगतं भैक्ष्यमक्षय्यमन्नं।
विस्तीर्णं वस्त्रमाशासु दशकममलं तल्पमस्वल्पमुर्वी ॥
येषां निःसङ्गताङ्गीकरणपरिणतिः स्वात्मसन्तोषिणस्ते।
धन्याः संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराः कर्मनिर्मूलयन्ति ॥"

—वैराग्यशतक।

भारतीय संस्कृत साहित्यमें भी दिगम्बर मुनियोंके उल्लेख मिलते हैं। इस साहित्यसे हमारा मतलब उस सर्वसाधारणोपयोगी संस्कृत साहित्यसे है, जो किसी खास सम्प्रदायका नहीं कहा जा सकता। उदाहरणतः कवि-वर भर्तृहरिके शतक-त्रयको लीजिये। उनके 'वैराग्यशतक' में उपरोक्त श्लोक द्वारा दिगम्बर मुनिकी प्रशंसा इन शब्दों में कीगई है कि "जिनका हाथही पवित्र बर्तन है, मांग कर लाई हुई भीखही जिनका भोजन है, दशों दिशायें ही जिनके वस्त्र हैं, सम्पूर्ण पृथ्वीही जिनकी शय्या है, एकान्तमें निःसंग रहना ही जो पसन्द करते हैं, दीनताको जिन्होंने छोड़ दिया है तथा कर्मोंको जिन्होंने निर्मूल कर दियाहै और जो अपने में ही संतुष्ट रहते हैं, उन पुरुषोंको धन्य है*।" आगे इसी

* वैरा०, पृ० [illegible]

मुनियोंको लक्ष्य करके लिखे गये हैं। इनमें वर्णित सबही लक्षण [illegible] मुनियोंमें मिलते हैं।

'मुद्राराक्षस' नाटकमें क्षपणक जीवसिद्धिका पार्ट दिगम्बर मुनिका द्योतक है +। वहाँ जीवसिद्धि के मुखसे कहलाया गया है कि—

"सासणमलिहंताणं पडिवज्जह मोहवाहिवेज्जाणं ।
जे मुत्तमत्तकडुअं पच्छापत्थं उवदिसन्ति ॥१८॥७॥"

अर्थात्—"मोहरूपी रोगके इलाज करने वाले अर्हंतोंके शासनको स्वीकार करो, जो मुहूर्त मात्रके लिये कड़वे हैं, किन्तु पीछेसे पथ्यका उपदेश देते हैं।"

इस नाटकके पाँचवें अङ्कमें जीवसिद्धि कहता है कि—

"अरहंताणं पणमामि जे गंभीरदाए बुद्धीए ।
लोअत्तरेहिं लोए सिद्धिं मग्गेहिं गच्छन्ति ॥२॥"

भावार्थ—"संसारमें जो बुद्धिकी गंभीरतासे लोकोत्तर (अलौकिक) मार्गसे मुक्तिको प्राप्त होते हैं, उन अर्हन्तों को मैं प्रणाम करता हूं।"*

'मुद्राराक्षस' के इस उल्लेखसे नन्दकालमें क्षपणक—दिगम्बर मुनियोंके निर्बाध विहार और धर्मप्रचारका समर्थन होता है, जैसे कि पहले लिखा जाचुका है।

'वराहमिहिर संहिता' में भी दिगंबर मुनियोंका

+ HDW., p. [illegible]

* वेजै०, [illegible] ४०-४१

संस्कृत साहित्यके उपरोक्त उल्लेखोंसे दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्व और उनके निर्बाध विहार और धर्मप्रचार करनेका समर्थन होता है।

---

[२१]

दक्षिण भारतमें दिगम्बर जैन मुनि।

"सरसा पयसा स्निग्धेनापि सुचक्रलेन च।
जिनस्तम्भादिकस्याग्रके तीर्थत्वमाश्रिते ॥४०॥
नागमेष्यति सखर्गो मारयोर मल्लिकादृ।
समास्यतीह कस्मिन्प्रान्ते विषये दक्षिणादिके ॥४१॥"

—श्री भद्रबाहुचरित्र।

दिगम्बर जैनधर्म दक्षिण भारत में सदा मिलिता है।

दिगम्बर जैनाचार्य, राजा चन्द्रगुप्तने जो स्वप्न देखा उसका फल बताते हुये कह गये हैं कि "धर्मरहित नया नहीं पोढ़े

---

moons and two sets of stars appear alternately; against them I allege this reasoning. How absurd is the notion which you have formed of duplicate suns, moons, and stars, when you see the revolution of the polar fish (*Ursa Minor*).' The commentator Lakshamidas agree that the Jainas are here meant ...& remarks that they are described as 'naked sectarians' etc, because the class of Digambaras is a principal one among these people."—AR., Vol. IX. p. 317.

जलसे भरे हुये सरोवरके देखनेसे यह स्वप्न आया कि जहाँ तीर्थंकर भगवानके कल्याणादि हुये हैं वैसे तीर्थस्थानोंमें काम-देवके मदका छेदन करने वाला उत्तम जिनधर्म नाशको प्राप्त होगा तथा कहीं दक्षिणादि देशमें कुछ रहेगा श्रीमान्!"* और दिगम्बरा-चार्योंकी यह भविष्यद्वाणी कुछेक कुछेक ठीक ही उतरी है। जब कि उत्तर भारतमें कभी २ दिगम्बर मुनियोंका अभाव भी हुआ, तब दक्षिण भारतमें आजतक बराबर दिगम्बर मुनि होते आये हैं। और दिगंबर जैनोंके श्री कुन्दकुन्दादि बड़े २ आचार्य दक्षिण भारतमें ही हुये हैं। अतः दक्षिण भारतको दिगम्बर मुनियोंका गढ़ कहना बेजा नहीं है।

ऋषभदेव और दक्षिण भारत

अच्छा तो यह देखिये कि दक्षिण भारतमें दिगम्बर मुनियों का सद्भाव किस जमाने से हुआ है। जैनशास्त्र बतलाते हैं कि इस कल्पकालमें कर्मभूमिके आदिमें श्री ऋषभदेवजीने सर्व प्रथम धर्मका निरूपण किया था और इनके पुत्र बाहुबलि दक्षिण भारतके राज्याधिकारी थे। पोदनपुर उनकी राजधानी थी। भगवान् ऋषभदेव ही सर्वप्रथम वहां धर्मोपदेश देते हुये पहुँचे थे।† वह दिगम्बर मुनि थे, यह पहले ही लिखा जा चुका है। उनके समयमें ही बाहुबलि भी राज्यपाट छोड़कर दिगम्बर मुनि होगये थे। इन दिगम्बर मुनि

---

* भद्र०, पृ० ३१

† आदिपुराण

की विशालकाय जैन मूर्तियां दक्षिण भारतमें अनेक स्थानों पर आज भी मौजूद हैं। श्रवणबेलगोलामें स्थित मूर्ति ५७ फीट ऊंची अति मनोज्ञ है, जिसके दर्शन करने देश-विदेशके यात्री आते हैं। कारकल—वेनूर आदि स्थानोंमें भी ऐसी ही मूर्तियां हैं। दक्षिण भारतमें बाहुबलि मुनिराजकी विशेष मान्यता है।‡

अन्य तीर्थंकरोंका दक्षिण भारतसे सम्बन्ध

ऋषभदेवके उपरान्त अन्य तीर्थंकरोंके समयमें भी दिगम्बर धर्मका प्रचार दक्षिण भारतमें रहा था। तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजीके तीर्थमें हुये राजा करकण्डुने आकर दक्षिण भारतके जैन तीर्थों की वन्दना की थी। मलय पर्वत पर रावणके वंशजों द्वारा स्थापित तीर्थंकरों की विशाल मूर्तियों की भी उन्होंने वन्दना की थी+। वहीं बाहुबलिकी और श्रीपार्श्वनाथजी की मूर्तियां थीं जिनको रामचन्द्रजीने लङ्कासे लाकर वहां स्थापित किया था×। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीरने भी अपने पुनीत चरणोंसे दक्षिण भारतको पवित्र किया था। मलयपर्वतवर्ती हेमांगदेश में जब वीर प्रभु पहुंचे थे तो वहां का जीवन्धर नामक राजा उनके निकट दिगम्बर मुनि होगया था+ .। इस प्रकार एक

---

‡ जैशिसं०, भूमिका पृ० १०-१२
\+ करकण्डु चरित संधि ८
× जैशिसं०, भूमिका पृ० २६
\+ उत्तपु०, पृष्ठ ३१

अन्यान्य प्राचीनकालसे दिगम्बर मुनियोंका सद्भाव दक्षिण भारतमें है।

दक्षिण भारत के इतिहास के काल

किन्तु आधुनिक इतिहासवेत्ता दक्षिण भारतका इतिहास ईस्वी पूर्व छठी या चौथी शताब्दिसे आरम्भ करते हैं और उसे निम्न प्रकार के भागों में विभक्त करते हैं*:—

(१) प्रारम्भिक काल—ईस्वी ५ वीं शताब्दि तक,

(२) पल्लवकाल—ई० ५ वीं से ६ वीं शताब्दि तक,

(३) चोल अभ्युदय काल—ई० ६ वींसे १४ वीं शताब्दि तक,

(४) विजयनगर साम्राज्यका उत्कर्ष—१४ वीं से १६ वीं श०

(५) मुसलमान और मरहटा काल—१६ वीं से १८ वीं श०

(६) ब्रिटिश काल—१८ वीं से १६ वीं श० ई०

दक्षिण भारतके उत्तर सीमावर्ती प्रदेशके इतिहासके भी भाग इस प्रकार हैं—

(१) आन्ध्र काल—ई० ५ वीं श० तक

(२) प्रारम्भिक चालुक्य काल—ई० ५ वींसे ७ वीं श० और राष्ट्रकूट ७ वीं से १० वीं श०

---

* SAI., p. 81.

कलिङ्गचक्रवर्ती ऐलखारवेल जैन थे। उनको सेनामें इन राजा-
ओं में से कदम्बवंशके स्वतः राजा-भेंट भेजी थी×। इससे
भी इन राजाओंका जैनत्व प्रमाणित है, क्योंकि एक श्रावक
का धर्मबन्धुके प्रति अनुराग होना स्वाभाविक है। और जब ये
राजा जैन थे तब इनका दिगम्बर जैन मुनियोंको आश्रय देना
प्राकृत आवश्यक है।

पाण्ड्यराज उग्रपेरुवलुदी (१२८-१४० ई०) के राजदर-
बारमें दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द विरचित तामिलग्रन्थ
"कुरल" प्रगट किया गया था‡। जैन कथाग्रन्थोंसे उस समय
दक्षिण भारतमें अनेक दिगम्बर मुनियोंका होना प्रकट है।
'करकण्डु चरिउ' में कलिङ्ग, तेर, द्रविड आदि दक्षिणावर्ती
देशोंमें दिगम्बर मुनियोंका वर्णन मिलता है। भ० महावीरने
मनुष्यहित इन देशोंमें विहार किया था, यह ऊपर लिखा जा
चुका है। तथा मौर्यचन्द्रगुप्तके समय श्रुतकेवली भद्रबाहु का
संघ सहित दक्षिण भारतको जाना इस बातका प्रमाण है कि
दक्षिण भारतमें उनसे पहले दिगम्बर जैनधर्म विद्यमान था।
जैनग्रन्थ "राजावली कथा" में जहाँ दिगम्बर जैन मन्दिरों और

तेरे णयर पंडिय विहारे—केसर मिलकदेवे णिमीवाहि।'
"करकण्डु" चरियहं जिणवरो दिगम्बर पडिवण्ण करेविहि तहो।
मग्गु मदि संठिवि णिव्वविवि करकण्डहोंआयउ पहुत्तु हुउ ११०॥
—करकण्डुचरिउ सन्धि ८

× JBORS, III p 446

‡ मजैस्मा०, पृ० १०४

दिगम्बर मुनियोंके होनेका वर्णन मिलता है। बौद्धग्रन्थ 'मणिमेखलै' में भी दक्षिण भारतमें ईस्वीकी प्रारम्भिक शताब्दियों में दिगम्बर धर्म और मुनियोंके होनेका उल्लेख मिलता है।*

"श्रुतावतार कथा" से स्पष्ट है कि ईस्वीकी पहली शताब्दिमें पश्चिम और दक्षिण भारत दिगम्बर जैनधर्मके केन्द्र थे। श्रीधर सेनाचार्यजीका संघ गिरनार पर्वत पर उस समय विद्यमान था। उनके पास आगमग्रन्थोंको लिपिबद्ध करने के लिये दो दीक्षित-मुनि शिष्य दक्षिण मथुरा से उनके पास आये थे और उपरान्त उन्होंने दक्षिण मथुरामें चतुर्मास व्यतीत किया था। इस उल्लेखसे उस समय दक्षिण मथुराका दिगम्बर मुनियोंका केन्द्र होना सिद्ध है।†

"नाल दियार" और दिगम्बर मुनि।

तामिल जैनग्रन्थ "नालदियार", जो ईस्वी पांचवीं शताब्दिकी रचना है, इस बात का प्रमाण है कि पाण्ड्यराजका देश प्राचीन कालमें दिगम्बर मुनियोंका आश्रय-स्थान था। स्वयं पाण्ड्यराज दिगम्बर मुनियोंके भक्त थे। "नालदियार" की उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा जाता है कि एक दफा उत्तर भारतमें दुर्भिक्ष पड़ा। उससे बचनेके लिये आठ हजार दिगम्बर मुनियोंका संघ पाण्ड्यदेश में आ रहा। पाण्ड्यराज उन मुनियोंकी विद्वत्ता और तपस्या को देखकर उनका भक्त बन गया। जब अच्छे दिन आये तो

---

* SSIJ., pp. 32—33. † श्रुता०, पृ० १९-२०

इस संघने उत्तर भारतकी ओर लौट जाना चाहा, किन्तु पाण्ड्यराज उनको सत्संगति छोड़ने के लिये तैयार न थे। आखिर उस मुनिसंघ का प्रत्येक साधु एक एक श्लोक अपने अपने आसन पर लिखा छोड़कर विहार कर गये। जब वे श्लोक एकत्र किये गये तो वह संग्रह एक अच्छा खासा काव्यग्रन्थ बन गया। यही "नालदियार" था ‡। इससे स्पष्ट है कि पाण्ड्यनरेश उस समय दि० जैनधर्मके पोषक और प्रजापालक कलभ्रवंशके सम्राट् थे। यह कलभ्रवंश उत्तरभारत से दक्षिणमें पहुंचा था और इस वंशके राजा दिगम्बर मुनियों के भक्त और रक्षक थे+।

गङ्गवंशके राजा और दिगम्बर मुनिगण।

ईस्वी दूसरी शताब्दिमें मैसूर में गङ्गवंशी जैनीराजा माधव कोंगुणिवर्म राज्य कर रहे थे×। उनके गुरु दि० जैनाचार्य सिंहनन्दि थे। गङ्गवंशकी स्थापनामें उक्त आचार्यका गहरा हाथ था। शिलालेखोंसे प्रकट है कि इक्ष्वाकु (सूर्यवंश) के राजा धनञ्जयकी सन्ततिमें एक गंगदत्त नामका राजा प्रसिद्ध हुआ और उसी के नामसे इस वंश का नाम 'गङ्ग' वंश पड़ा था। इस गङ्गवंशमें एक पद्मनाभ नामक राजा हुआ, जिसका झगड़ा उज्जैनके राजा महीपाल से होने के कारण वह दक्षिण भारतकी ओर चला गया था।

---

‡ SSIJ., p. 91 + मजैस्मा०, भूमिका पृ० ८-६

× मजैस्मा०, परिचय, पृ० १६५

उसके दो पुत्र दडिग और माधव भी उनके साथ गये थे। दक्षिण में पेरूर नामक स्थान पर उन दोनों भाइयों की भेंट कणूरगणके आचार्य सिंहनन्दिसे हुई, जिन्होंने उन्हें निम्नप्रकार उपदेश दिया था :—

"यदि तुम अपनी प्रतिज्ञा भंग करोगे, यदि तुम जिन-शासन से हटोगे, यदि तुम परस्त्रीका ग्रहण करोगे, यदि तुम मद्य व मांस खाओगे, यदि तुम अधमोंका संसर्ग करोगे, यदि तुम आवश्यकता रखने वालोंको दान न दोगे और यदि तुम युद्धमें भाग जाओगे तो तुम्हारा वंश नष्ट होजायगा।"*

दिगम्बराचार्यके इस साहस बढ़ाने वाले उपदेशको दडिग और माधवने शिरोधार्य किया और उन आचार्यके सहयोगसे वह दक्षिण भारतमें अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुये थे। उपरान्त इस वंशके सभी राजाओंने जैन-धर्मका प्रभाव बढ़ानेका उद्योग किया था। दिगम्बर जैनाचार्य की कृपासे राज्य पा लेनेकी यादगारमें इन्होंने अपनी ध्वजा में "मोरपिच्छिका" का चिह्न रक्खा था, जो दिगम्बर मुनियों के उपकरणोंमें से एक है।

गङ्गवंशी अविनीत कोंगुणी (सन् ४२५—४७८) ने पुन्नाट १०००० में जैनमुनियोंको भूमिदान दिया था। गङ्गवंशी दुर्विनीतिके गुरु 'शब्दावतार' के कर्ता दिगम्बराचार्य श्री पूज्यपाद थे।†

---

* मजैस्मा०, पृ० १८८-१८७ † मजैस्मा०, पृ० १८२

> कदम्ब राजागण
> दिग० मुनियोंके भक्त थे

महाराष्ट्र और कोंकण देशोंकी ओर उस समय कादम्बवंश के राजा लोग उन्नत हो रहे थे। यह वंश (१) गोआ और (२) बनवासी, ऐसे दो शाखाओंमें बंटा हुआ था और इसमें जैनधर्मकी मान्यता विशेष थी। दिगम्बर गुरुओंकी विनय कादम्बराजा खूब करते थे। एक विद्वान् लिखते हैं कि:—

"Kadamba Kings of the middle period Mrigesa to Harivarma were unable to resist the onset of Jainism as they had to bow to the "Supreme Arhats" and endow lavishly the Jain ascetic groups. Numerous sects of Jaina priests, such as the Yapaniyas, the Nirgranthas and the Kurchakas are found living at Palasika (IA. VII. 36—37) Again Svetpatas and Ahoroshis are also mentioned. (Ibid VI 31) Banavase and Palasika were thus crowded centres of powerful Jain monks. Four Jaina Mss named Jayadhavala, Vijaya Dhavala, Atidhavala and Mahadhavala written by Jaina *Gurus* Viresena and Jinasena living at Banavase during the rule of the early Kadambas were recently discovered"

—QJMS XXII 61—62

अर्थात्—"मध्यकालके मृगेशसे हरिवर्मा तक कदम्ब-

वंशी राजागण जैनधर्मके प्रभावसे अपने को बचा न सके। 'महान् अर्हद्देव' को नमस्कार करते और जैनसाधुसंघों को खूब दान देते थे। जैन साधुओंके अनेक संघ जैसे यापनीय* निर्ग्रन्थ† और कूर्चक‡ कदम्बोंकी राजधानी पालाशिकमें रह रहे थे। श्वेतपट+ और अहरिष्टि× संघोंके वहां होनेका उल्लेखभी मिलता है। इस तरह पालाशिक और वनवासी सायत जैन साधुओंसे वेष्टित मुख्य जैनकेन्द्र थे। दिगम्बर जैन गुरु वीरसेन और जिनसेन ने जिन जयधवल, विजयधवल, अतिधवल और महाधवल नामक ग्रंथों की रचना वनवासीमें रहकर प्रारंभिक कदम्ब राजाओंके समयमें की थी, उन चारों ग्रंथोंकी प्रतियाँ हालहीमें उपलब्ध हुई हैं।"

प्रो० शेषगिरि राव इन प्रारंभिक कदम्बोंको भी जैनधर्मका भक्त प्रगट करते हैं। उनके राज्यमें दिगम्बर जैन मुनियोंको धर्मप्रचार करनेकी सुविधायें प्राप्त थीं।+ इस प्रकार कदम्बवंशी राजाओं द्वारा दिगम्बर मुनियोंका समुचित सम्मान किया गया था।

---

* यापनीय संघके मुनिगण दिगम्बर भेष में रहते थे, यद्यपि वे स्त्री-मुक्ति आदि मानते थे। देखो दर्शनसार

† 'निर्ग्रन्थ'=दिगम्बर मुनि

‡ 'कूर्चक' किन जैनसाधुओं का द्योतक है यह प्रगट नहीं है।

+ श्वेतपट=श्वेताम्बर

× अहरिष्टि संभवतः दिगम्बर मुनियों का द्योतक है। शायद 'अहीक' शब्द से इसका निकास हो।

+ SSIJ., pt. II p. 69-72

पल्लवदेश में दिगम्बर मुनि।

एक समय पल्लववंशके राजा भी जैनधर्मके रक्षक थे। सातवीं शताब्दिमें जब हुएनत्सांग इस देशमें पहुंचा तो उसने देखा कि यहां दिगम्बर जैन साधुओं (निर्ग्रंथों) की संख्या अधिक है। पल्लववंशके शिवस्कंदवर्मा नामक राजाके गुरु † दिगंबराचार्य कुन्दकुन्द थे। उपरान्त इस वंशका प्रसिद्ध राजा महेन्द्रवर्मन् पहले जैन था और दिगम्बर साधुओंकी विनय करता था+।

पांड्यदेश में दिगम्बर मुनि।

पांड्यदेशमें भी उस चीनी यात्री ने दिगम्बरधर्मको प्रचलित पाया था।× मलकूट (पाण्ड्यदेश) में भी उसने नंगे जैनियोंको बहुसंख्यामें पाया था ÷। सातवीं शताब्दिके मध्यभागमें पाण्ड्यदेशका राजा कुण या सुन्दर पाण्ड्य दिगम्बर मुनियोंका भक्त था। उसके गुरु दिगम्बराचार्य श्री अमलकीर्ति थे * और उसका विवाह एक चोल राजकुमारी के साथ हुआ था, जो शैव थी। उन्हींके संसर्ग में सुन्दर पाण्ड्य भी शैव हो गया था। ‡

---

† P S Hist Intro., p. XV

+ EHI p. 493

× हुएन०, पृ० २३१

÷ हुएन०, पृ० २३४—"The nude Jainas were present in multitudes"—EHI. p 478

* ADJB. p. 16 ‡ EHI p. 475

दसवीं श० तक प्रायः सब भारत दि० जैनधर्मका आश्रयदाता थे

सच बात तो यह है कि दक्षिण भारतमें दिगम्बर जैनधर्मकी मान्यता ईस्वी दसवीं शताब्दि तक खूब रही थी। दिगम्बर मुनिगण सर्वत्र विहार करके धर्मका उद्योत करते थे। इसी का परिणाम है कि दक्षिण भारतमें आजभी दिगम्बर मुनियों का सद्भाव है। मि० राइस इस विषयमें लिखते हैं कि—

"For more than a thousand years after the beginning of the Christian era, Jainism was the religion professed by most of the rulers of the Kanarese people. The Ganga Kings of Talkad, the Rashtra Kuta and Kalachurya Kings of Manyakhet and the early Hoysalas were all Jains. The Brahmanical Kadamba and early Chalukya Kings were tolerant of Jainism. The Pandya Kings of Madura were Jainas and Jainism was dominant in Gujerat and Kathiawar."*

भावार्थ—"ईस्वी सन्के प्रारंभ होनेसे एक हजारसे ज्यादा वर्षों तक कनड़ देशके अधिकांश राजाओंका मत जैनधर्म था। तलकाडके गङ्ग राजागण, मान्यखेट के राष्ट्रकूट और कलाचूर्य शासक और प्रारंभिक होयसल नृप सब ही जैनी थे। ब्राह्मणमतको मानने वाले भी कादम्बराजा

* HKL, p. 16

राजाओंने अणुव्रतों और महाव्रतों को धारण किया था, जिस के कारण जैनधर्मकी विशेष प्रभावना हुई थी। राष्ट्रकूट राज्य में अनेकानेक दिग्गज विद्वान् दिगम्बर मुनि विहार और धर्म-प्रचार करते थे। उनके रचे हुए अनूठे ग्रंथरत्न आज उपलब्ध हैं। श्री जिनसेनाचार्य का "हरिवंशपुराण", श्री गुणभद्राचार्यका "उत्तर पुराण", श्रीमहावीराचार्यका "गणितसार संग्रह" आदि ग्रंथ राष्ट्रकूट राजाओंके समयकी रचनायेंहैं+। इन राजाओंमें अमोघवर्ष प्रथम एक प्रसिद्ध राजा था। उसकी प्रशंसा अरबके लेखकोंनेकी है और उसे संसारके श्रेष्ठ राजाओं में गिना है×। वह दिगम्बर जैनाचार्योंका परमभक्त था।

सम्राट् अमोघ वर्ष
दिगम्बर मुनि थे

उसने स्वयं राज-पाट त्याग कर दिगम्बर मुनिका व्रत स्वीकार किया था ÷। उसका रचा हुआ 'रत्नमालिका' एक प्रसिद्ध सुभाषित ग्रन्थ है। उसके गुरु दिगम्बराचार्य श्री जिनसेन थे, जैसे कि "उत्तर पुराण" के निम्न श्लोकमें कहा गया है कि वे श्री जिनसेनके चरणोंमें नतमस्तक होते थे :—

+ SSIJ, pt. I pp 111—112

× Elliot, Vol I pp. 3-24—"The greatest King of India is the Balahara, whose name imports 'King of Kings'."—Ibn Khurdabb. व भाप्रारा०, भाग ३ पृ० ११-१५

÷ 'रत्नमालिका' में अमोघवर्षने इस बातको इन शब्दों में स्वीकार किया है :—

"विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका
रचितामोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः ॥"

का अनुयायी था और उसने सल्लेखना व्रत धारण किया था *।

गङ्गवंश और जैनधर्म चामुण्डराय।

इस समय गंगवाडी के गङ्गराजाओंने जैनोत्कर्ष के लिये खास प्रयत्न किया था। राचमल्ल सत्यवाक्य और उनके पूर्वज मारसिंह के मन्त्री और सेनापति दिगम्बर जैन धर्मानुयायी वीरमार्तण्ड राजा चामुण्डरायथे। इस राजवंशकी राजकुमारी पम्पि-अव्वेने आर्यिकाके व्रत धारण कियेथे †। श्री अजितसेनाचार्य और नेमिचन्द्राचार्य इन राजाओंके गुरुथे। चामुण्डरायजीके कारण इन राजाओं द्वारा जैनधर्मकी विशेष उन्नति हुई थी। दिगंबर मुनियोंका सर्वत्र आनन्दमई विहार होता था‡।

कलचूरि वंशके राजा दिगम्बर मुनियों के बड़े रक्षक थे।

किन्तु गङ्गोंका साम्राज्य पाकर भी राष्ट्रकूट वंश अधिक दिन न टिक सका। और पश्चिमीय चालुक्य प्रधानता पा गये। किन्तु यह भी अधिक समय तक राज्य न कर सके—उनको कलचूरियों ने हरा दिया। कलचूरी वंशके राजा जैनधर्मके परम भक्त थे। इनमें विज्जलराजा प्रसिद्ध और जैनधर्मानुयायी था। इसी राजाके समयमें बासवने "लिंगायत" मत स्थापित कियाथा।

---

* SSIJ pt. I p. 112

† मजैस्मा० पृ० १३०

‡ वीर, वर्ष ० अङ्क १-२ देखो

किन्तु विज्जल राजाकी दिगम्बर जैनधर्मके प्रति अटूट भक्ति के कारण वासव अपने मतका बहुप्रचार करनेमें सफल न हो सका था। आखिर जब विज्जलराज कोल्हापुरके शिलाहार राजाके विरुद्ध युद्ध करने गये थे, तब इस वासवने धोखे से उन्हें विष देकर मार डाला था+। और तब कहीं लिंगायत मतका प्रचार हो सका था। इस घटनासे स्पष्ट है कि विज्जल दिगम्बर मुनियोंके लिये कैसा आश्रय था।

होयसालवंशी राजा और दिगम्बर मुनि।

मैसोरके होयसाल वंशके राजागण भी दिगम्बर मुनियों के आश्रयदाता थे। इस वंशकी स्थापनाके विषयमें कहा जाता है कि साल नामका एक व्यक्ति एक मंदिरमें एक जैन यतिके पास विद्याध्ययन कर रहा था, उस समय एक शेरने उन साधुपर आक्रमण किया। सालने शेरको मारकर उनकी रक्षा की और वह 'होयसाल' नामसे प्रसिद्ध हुआ था×। उपरान्त उन्हीं जैन-साधुका आशीर्वाद पाकर उसने अपने राज्यकी नींव जमाई थी, जो खूब फला फूला था। इस वंशके सबही राजाओंने दिगम्बर मुनियोंका आदर किया था, क्योंकि ये सब जैनधर्मी थे*। होयसाल राजा विनयादित्यके गुरु दिगम्बर साधु श्री शान्तिदेव मुनि थे। इन राजाओंमें विट्टिदेव अथवा विष्णुवर्द्धन

+ मजैस्मा०, पृ० १२८-१२६

× SSIJ, pt I p. 115

+ मजैस्मा०, पृ० १२६-१३० * SSIJ, pt I p. 115

राजा प्रसिद्ध था। यह भी जैनधर्मका दृढ़ श्रद्धानी था। उसकी रानी शान्तलदेवी प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री प्रभाचन्द्रकी शिष्या थी‡। किन्तु उसकी एक दूसरी रानी वैष्णवधर्म की अनुयायी थी। एक रोज़ राजा इस रानीके साथ राजमहल के झरोखेमें बैठा हुआ था कि सड़क पर एक दिगम्बर मुनि दिखाई दिये। रानी ने राजाको बहकाने के लिये यह अवसर अच्छा समझा। उसने राजासे कहा कि "यदि दिगम्बर साधु तुम्हारे गुरु हैं तो भला उन्हें बुलाकर अपने हाथमें भोजन करादो"। राजा दिगम्बर मुनियोंके धार्मिक नियमको भूलकर कहने लगे कि "यह कौन बड़ी बात है"। अपने हीन अङ्गका उसे ख्याल न रहा। दिगम्बर मुनि अङ्गहीन, रोगी आदि के हाथ से भोजन ग्रहण न करेंगे, इसका उसने ध्यान भी न किया और मुनिमहाराज को पड़गाह लिया। मुनिराज अंतराय हुआ जानकर वापस चले गये। राजा इस पर चिढ़ गया और वह वैष्णव धर्ममें दीक्षित होगया*। किन्तु उसके वैष्णव हो जानेपर भी दिगम्बर मुनियोंका बाहुल्य उसके राज्यमें बना रहा। उसकी अग्रमहषी शान्तलदेवी बराबर दिगम्बर मुनियोंकी भक्त थी और उसके सेनापति तथा प्रधान मंत्री गंगराजजी दिगम्बर मुनियोंके परम सेवक थे। उनके संसर्गसे विष्णुवर्द्धनने अन्तिम समयमें भी दिगम्बर

‡ Ibid. p. 116

* AR., Vol. IX p.266

मुनियोंका सम्मान किया और जैन मन्दिरों को दान दिया था†। उनके उत्तराधिकारी नरसिंह प्रथम द्वारा भी दिगम्बर मुनियोंका सम्मान हुआ था। नरसिंहका प्रधानमंत्री हुल्ल दिगम्बर मुनियोंका परम भक्त था। उस समय दक्षिण भारत में माघनन्दि, नयकीर्ति और कुमुद दिगम्बराचार्य महान् प्रभावक और स्वतंत्र समझे जाते थे‡। बल्लालराय होयसालके गुरु श्री वासुपूज्य व्रती थे+। राजा नृसिंह होयसालके गुरु शान्तिमुनि थे।×

विजयनगर साम्राज्यमें दिगम्बर मुनि।

विजयनगर साम्राज्यकी स्थापना आर्य-सभ्यता और संस्कृतिकी रक्षाके लिये हुई थी। वह हिन्दू संगठनका एक आदर्श था। शैव-वैष्णव-जैन—सबही कंधे से कंधा जुटा कर धर्म और देश रक्षाके कार्यमें लगे हुए थे। स्वयं विजयनगर सम्राटोंमें हरिहर द्वितीय और राजकुमार उग्र दिगम्बर जैनधर्ममें दीक्षित होकर दिगंबर मुनियोंके महान् आश्रयदाता हुये थे+। दिगंबर मुनि श्री धर्मभूषणजी राजा देवरायके गुरु थे तथा आचार्य विद्यानन्दिने देवराय और कृष्णराय नामक राजाओं के दरबारमें वाद किया था तथा विजयी और कालक्रममें दिगंबर धर्मकी रक्षा की थी।*

---

† मजैस्मा० प्रस्तावना पृ० ११ ‡ Ibid.
+ मजैस्मा०, पृ० १६२ × ADJB., p. 31
+ SSIJ., pt. I p. 118 * मजैस्मा०, पृ० १६२

मथ्युरगय राजाके सम्मुख श्री दिगंबर मुनि नेमिचन्द्रने वाद किया था।+

पल्लविद् राजा और दिगम्बर मुनि

पुलही (उत्तर अर्काट) के मौलदे ऋषभदेव मंदिरके विषयमें कहा जाता है कि पगड़ाविदु राजाकी लड़कीको भूतबाधा लगती थी। उसी समय कुछ शिकारियोंके पास एक दिगंबर मुनिने श्री ऋषभदेव की मूर्ति देखी। मुनिजी ने यह मूर्ति उनसे लेली। इन्हीं शिकारियोंने राजासे मुनिजी की प्रशंसा की। तदनुसार राजाने मुनिजी की वन्दना की और उनसे भूतबाधा दूर करनेका अनुरोध किया। मुनिजी ने लड़की की भूतबाधा दूर करदी। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उक्त मंदिर बनवाया।*

दो सौ वर्ष पहले दिगम्बर मुनि

दक्षिण भारतमें दो सौ वर्ष पहले कई एक दिगंबर मुनियोंका सद्भाव था। उनमें अम्मगुडीके पार्श्वकुलिदासजी ऋषि प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कई मूर्तियों और मंदिरोंकी प्रतिष्ठा कराई थी। † उनके अतिरिक्त सौंध महा मुनि और पण्डित महामुनिजी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने चित्तम्बूर नामक ग्राम

+ मजैस्मा०, पृ० १६२

* दिजैडा०, पृ० ४८०

† Ibid, p. 304

में वहाँ के ब्राह्मणोंके साथ वाद किया था और जैनधर्म का डंका बजाया था। तब से वहाँ पर एक जैन विद्यापीठ स्थापित है*। सचमुच दक्षिण भारतमें एक अत्यन्त प्राचीनकाल से सिलसिलेवार दिगम्बर मुनियोंका सद्भाव रहा है। प्रो० ए० एन० उपाध्याय इस विषयमें लिखते हैं कि दक्षिण भारत में नियमितरूपमें दिगम्बर मुनि होते आये हैं। पिछले सौ वर्षों में सिद्धप्प आदि अनेक दिगम्बर मुनि इस ओर हो गुज़रे हैं, किन्तु खेद है, उनकी जीवन सम्बन्धी वार्ता उपलब्ध नहीं है।

महाराष्ट्र देश के दिगम्बर जैन मुनि।

दक्षिण भारतकी तरह ही महाराष्ट्रभी जैनधर्मका केन्द्र था† वहाँ अब तक दिगंबर जैनोंकी बाहुल्यता है। कोल्हापुर, बेलगाम आदि स्थान जैनोंकी मुख्य बस्तियाँ थीं। कहते हैं एक मरतबा कोल्हापुरमें दिगंबर मुनियोंका एक वृहत् संघ आकर ठहरा था। राजा और रानीने भक्तिपूर्वक उसकी वन्दना की थी। दैवयोग से संघ जहाँ पर ठहरा था वहाँ आग लग गई। मुनिगण उसमें भस्म होगये। राजाको बड़ा परिताप हुआ। उसने उनके स्मारकमें १०८ दि० मन्दिर बनवाये। संघ में १०८ ही दिगम्बर मुनि थे‡। इस घटनासे महाराष्ट्रमें एक समयमें दिगंबर मुनियोंकी बाहुल्यता

---

* दिजैडा०, पृष्ठ ८४६

† Jainism was specially popular in the Southern Maratha country." EHI, p. 444

‡ बंप्राजैस्मा०, पृ० ८६

बड़े ज्ञानी थे। दक्षिण भारतके अधिवासी होते परभी उन्होंने गिरिनार पर्वत पर जाकर श्वेतांबरोंसे वाद किया था+। तामिल साहित्यका नीतिग्रन्थ कुरल उन्हींकी रचना थी×। इन और उन्हींके समान अन्य दिगंबराचार्योंके विषयमें प्रो० रामास्वामी ऐय्यंगर लिखते हैं :—

"First comes Yatindra Kunda, a great Jain Guru, 'who in order to show that both within & without he could not be assisted by *Rajas*, moved about leaving a space of four inches between himself and the earth under his feet'. Uma Svami, the compiler of *Tattvartha Sutra*, Griddhrapunchha, and his disciple Balakapunchha follow. Then comes Samantabhadra, 'ever fortunate', 'whose discourse lights up the palace of the three worlds filled with the all meaning Syadvada'. This Samantabhadra was the first of a series of celebrated Digambara writers who acquired considerable predominance, in the early Rashtrakuta period. Jain tradition assigns him Saka [illegible] or 138 A. D.............He was a great Jaina missionary who tried [illegible] spre-

+ दिगैतर०, पृ० ७१
× SSIJ., I. pp. 40—44 & 80

ed far and wide Jaina doctrines and morals and that he met with no opposition from other sects wherever he went. Samantabhadra's appearance in South India marks an epoch not only in the annals of Digambara tradition, but also in the history of Sanskrit literature...... After Samantabhadra a large number of Jaina *Munis* took up the work of proselytism. The more important of them have contributed much for the uplift of the Jaina world in literature and secular affairs. There was, for example, Simhanandi, the Jaina sage, who, according to tradition, founded the state of Gangavadi. Other names are those of Pujyapada, the author of the incomparable grammar, *Jinendra Vyakarana* and of Akalanka who, in 788 A. D., is believed to have confuted the Buddhists at the court of Himasitala in Kanchi, and thereby procured the expulsion of the Buddhists from South India."—SSIJ, pt I pp 29-31

भावार्थ—"पहले दो महान् जैनगुरु यतीन्द्र कुन्दकुन्द नाम मिलता है जो गणधरोंके प्रति निपुणता दिखाते हुये अमर बनाते थे। 'तत्त्वार्थ सूत्र' के कर्ता उमास्वामी गृद्धपिच्छ

और उनके शिष्य बलाकपिच्छ उनके बाद आते हैं। तब समन्तभद्रका नाम दृष्टि पड़ता है जो सदा भाग्यवान् रहे और जिनकी स्याद्वादरूपवाणी तीन लोकको प्रकाशमान् करती थी। यह समन्तभद्र प्रारंभिक राष्ट्रकूट कालके अनेक प्रसिद्ध दिगंबर मुनियोंमें सर्व प्रथम थे। उनका समय जैनमतानुसार सन् १३८ ई० है। यह महान् जैन प्रचारक थे, जिन्होंने चहुँओर जैनसिद्धान्त और शिक्षाका प्रचार किया और उन्हें कहीं भी किसी विपक्षी संप्रदायके विरोधको सहन न करना पड़ा। उनका प्रादुर्भाव दक्षिण भारतके दिगम्बर जैन इतिहासके लिये ही युगप्रवर्तक नहीं है, बल्कि उनसे संस्कृत साहित्यमें एक महान् परिवर्तन हुआ था। समन्तभद्रके बाद बहुसंख्यक जैन साधुओंने ग्रंथोंकी रचनेका कार्य किया था। उनमें से प्रसिद्ध साधुओंने जैनसंसारको साहित्य और राष्ट्रीय अपेक्षा उन्नत बनाया था। उदाहरणतः जैनाचार्य सिंहनन्दिने गंगवाडी का राज्य स्थापित कराया था। अन्य आचार्योंमें पूज्यपाद, जिनकी रचना अद्वितीय "जिनेन्द्र व्याकरण" है और अकलङ्क देव हैं जिन्होंने कांची के हिमशीतल राजाके दरबारमें बौद्धों को वादमें परास्त करके उन्हें दक्षिण भारतसे निकलवा दिया था।"

श्री उमास्वामी—श्री कुन्दकुन्दाचार्यके उपरान्त श्री उमास्वामी प्रसिद्ध आचार्य थे, प्रो० सा० का यह प्रकटकरना निस्सन्देह ठीक है। उनका समय वि० सं० ८१ है। गुजरात

प्रान्तके चित्तिलपुरमें जब वह मुनिराज विहार कर रहे थे और एक हूँपरचक नामक श्रावकके घर पर उसकी अनुपस्थितिमें आहार लेने गये थे, तब वहां पर एक अशुद्ध सूत्र देखकर उसे शुद्ध कर आये थे। हूँपरचकने जब घर आकर यह देखा तो उसने उमास्वामीसे "तत्वार्थसूत्र" रचनेकी प्रार्थना की थी। तदनुसार वह ग्रन्थ रचा गया था। उमास्वामी दक्षिण भारत के निवासी और आचार्य कुन्दकुन्दके शिष्य थे, ऐसा उनके 'गृद्धपिच्छ' विशेषणसे बोध होता है।*

श्री समन्तभद्राचार्य—श्रीसमन्तभद्राचार्य दिगम्बरजैनों में बड़े प्रतिभाशाली नैयायिक और वादी थे। मुनिदशामें उन को भस्मक रोग हो गया था, जिसके निवारणके लिये वह काञ्चीपुरके शिवालय में शैव-संन्यासीके भेषमें आरहे थे। वहीं 'स्वयंभू स्तोत्र' रचकर शिवकोटि राजाको आश्चर्यचकित कर दिया था। परिणामतः वह दिगम्बर मुनि होगया था। समन्त-भद्राचार्यने सारे भारतमें विहार करके दिगम्बर जैनधर्म का डंका बजाया था। उन्होंने प्रायश्चित लेकर पुनः मुनिवेष और फिर आचार्य पद धारण किया था। उनकी ग्रंथ रचनायें जैन धर्मके लिये बड़े महत्व की हैं।†

श्री पूज्यपादाचार्य—कर्णाटक देशके कोलंगाल नामक गांवमें एक ब्राह्मण माधवभट्ट विक्रमकी चौथी शताब्दिमें रहता था। इन्हींके भाग्यवान पुत्र श्रीपूज्यपादाचार्य थे। उनका दीक्षा

---

* वीर०, पृ० ३२ † Ibid पृ० ३८।

नाम श्री देवनन्दि था। नाना देशोंमें विहार करके उन्होंने धर्मोपदेश दिया था, जिसके प्रभावसे सैकड़ों प्रसिद्ध पुरुष उनके शिष्य हुये थे। गङ्गवंशी दुर्विनीत राजा उनका मुख्य शिष्य था। "जैनेन्द्रव्याकरण", "शब्दावतार" आदि उनकी श्रेष्ठ रचनायें हैं।‡

श्री वादीभसिंह—यतिवर श्री वादीभसिंह श्रीपुष्पसेन मुनिके शिष्य थे। उनका गृहस्थ दशाका नाम 'ओडयदेव' था, जिससे उनका दक्षिणदेशवासी होना स्पष्ट है। उन्होंने सातवीं श० में "क्षत्रचूड़ामणि", "गद्यचिन्तामणि" आदि ग्रन्थोंकी रचना की थी।+

श्री नेमिचन्द्राचार्य—श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्त चक्रवर्ती नन्दिसङ्घके स्वामी अभयनन्दिके शिष्य थे। वि० सं० ७३५ में द्रविड़देशके मथुरा नगरमें वह रहते थे। उन्होंने जैनधर्मका विशेष प्रचार किया था और उनके शिष्य गङ्गवंशके राजा श्री राचमल्ल और सेनापति चामुण्डराय आदि थे। उनकी रचनाओंमें "गोमट्टसार" ग्रन्थ प्रधान है।×

श्री अकलङ्काचार्य—श्री अकलङ्काचार्य देवसङ्घके साधु थे। बौद्धमठमें रहकर उन्होंने विद्याध्ययन किया था। उपरांत बौद्धोंसे वाद करके उनका पराभव और जैनधर्मका उत्कर्ष प्रकट कियाथा। काँचीके हिमशीतल राजा उनका मुख्य शिष्य

---

‡ Ibid. पृ० ३६।

+ Ibid पृ० ३७।

× Ibid पृ० ३७-३८।

था। उनके रचे हुये ग्रन्थ में राजवार्तिक, अष्टशती, न्यायविनिश्चयालंकार आदि मुख्य हैं।+

श्री जिनसेनाचार्य—राजाओंसे पूजित श्री वीरसेन स्वामीके शिष्य श्री जिनसेनाचार्य सम्राट् अमोघवर्षके गुरु थे। उस समय उनके द्वारा जैनधर्मका उत्कर्ष विशेष हुआ था। वह प्रतिभाशाली कवि थे। उनका "पार्श्वाभ्युदयकाव्य" कालिदासके मेघदूत काव्यकी समस्यापूर्ति रूपमें रचा गया था। उनकी दूसरी रचना 'महापुराण' भी काव्यदृष्टिसे एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। उनके शिष्य गुणभद्राचार्यने इस पुराणके शेषांश की पूर्ति की थी।*

श्री विद्यानन्दिआचार्य—श्रीविद्यानन्दि आचार्य कर्णाटकदेशवासी और ब्राह्मणकुलमें एक वेदानुयायी ब्राह्मण थे। 'देवागम' स्तोत्रको सुनकर वह जैनधर्ममें दीक्षित होगये थे। दिगंबर मुनि होकर उन्होंने राजदरबारोंमें पहुंचकर ब्राह्मणों और बौद्धोंसे वाद किये थे जिनमें उन्हें विजय भी प्राप्त हुई थी। अष्टसहस्री, आप्तपरीक्षा आदि ग्रंथ उनकी दिव्य रचनायें हैं।†

+ Ibid पृ० ७६।
* Ibid पृ० ४०-४१।
† Ibid पृ० ४१-४२।

श्री वादिराज—श्रीवादिराजसूरि नन्दिसंघके आचार्य थे। उनकी 'षट्तर्कषण्मुख', 'स्याद्वादविद्यापति' और 'जगदेकमल्लवादी' उपाधियाँ उनके गौरव और प्रतिभाकी सूचक हैं। उनको एक बार कुष्ट रोग होगया था; किन्तु उनने योगबल से 'एकीभावस्तोत्र' रचते हुए उस रोग से वह मुक्त हुए थे। यशोधर चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्र आदि ग्रंथभी उन्होंने रचे थे‡।

आप चालुक्यवंशीय नरेश जयसिंहकी सभाके प्रख्यात वादी थे। वे स्वयं सिंहपुरके राजा थे। राज्य त्यागकर दिगम्बर मुनि हुए थे। उनके दादा-गुरु श्रीपालभी सिंहपुराधीश थे। (जैमि०, वर्ष [illegible] अङ्क ४ पृ० ७२)

इसी प्रकार श्री मल्लिषेणाचार्य, श्रीसोमदेवसूरि आदि अनेक लब्धप्रसिद्ध दिगंबर जैनाचार्य दक्षिणभारतमें हो गुजरे हैं, जिनका वर्णन अन्य ग्रन्थोंसे देखना चाहिए।

इन दिगंबराचार्योंके विषयमें उक्त विद्वान् आगे लिखते हैं कि "समग्र दक्षिण भारत विद्वान् जैन साधुओंके छोटे छोटे समूहोंसे अलंकृत था, जो धीरे २ जैनधर्मका प्रचार जनताकी विविध भाषाओंमें ग्रन्थ रचकर कर रहे थे। किन्तु यह सम-

---

‡ Ibid पृ० ४२।

भ्रम ग़लत है कि यह साधुगण लौकिक कार्योंसे विमुख थे। *
किसी हद तक यह सच है कि वे दुनियासे ज़्यादा मिलते-जुलते नहीं थे। किन्तु ई० पू० चौथी शताब्दिमें मेगास्थनीज़के कथनसे प्रगट है कि जैन श्रमण, जो जंगलों में रहते थे, उनके पास अपने राजदूतों को भेजकर राजागण वस्तुओंके कारण के विषयमें उनका अभिप्राय जानते थे। जैन गुरुओंने ऐसे कई राज्योंकी स्थापना की थी, जिन्होंने कई शताब्दियों तक जैन-धर्मको आश्रय दिया था"।

---

* "The whole of South India strewn with small groups of learned Jain ascetics, who were slowly but surely spreading their morals through the medium of their sacred literature composed in the various vernaculars of the country. But it is a mistake to suppose that these ascetics were indifferent towards secular affairs in general. To a certain extent it is true that they did not mingle with the world. But we know from the account of Megasthenes that, so late as the 4th century B. C., 'The Sarmanes or the Jain Sarmanes who lived in the woods were frequently consulted by the kings through their messengers regarding the cause of things.' Jaina Gurus have been founders of States that for centuries together were tolerant towards the Jain faith."

—SSIJ., I. 106.

प्रो० डॉ० बी० शेषगिरिरावने दक्षिण भारतके दिगंबर मुनियोंके सम्बन्धमें लिखा है कि "जैन मुनिगण विद्या और विज्ञानके भंडार थे, आयुर्वेद और मन्त्रशास्त्रके भी वे महा विद्वान् थे; ज्योतिषशास्त्र उनका अच्छा खासा था; व्याकरण शास्त्र सिद्धांत और साहित्य को उन्होंने रचा था। जैनमान्यतामें ऐसे सफल एवं प्राचीन आचार्य कुन्दकुन्द कहे गए हैं, जिन्होंने बेलारी जिले के कोण्डकुण्ड प्रदेशमें ध्यान और तपस्या की थी" ‡।

इस प्रकार दक्षिण भारतमें दिगंबर मुनियोंके अस्तित्व का चमत्कारिक वर्णन है और यह इस बातका प्रमाण है कि दक्षिण भारत एक अत्यन्त प्राचीनकालसे दिगंबर मुनियों का आश्रयस्थान रहा है तथा यह आगे भी रहेगा, इसमें संशय नहीं।

---

‡ SSIJ., pt. II pp. 9—10

[२२]

तामिल-साहित्य में दिगम्बर मुनि।

"Among the systems controverted in the *Manimekhalai*, the Jaina system also figures as one and the words *Samanas* and *Amanas* are of frequent occurrence; so also references to their *Viharas*, so that from the earliest times reachable with our present means, Jainism apparently flourished in the Tamil Country." *

तामिल साहित्य के मुख्य और प्राचीन लेखक दिगंबर जैन विद्वान रहे हैं। और उनका सर्वप्राचीन व्याकरण-ग्रन्थ "तोल्काप्पियम्" (Tolkappiyam) एक जैनाचार्य की ही रचना है†। किन्तु हम यहां पर तामिल-साहित्य के जैनों द्वारा रचे हुये अङ्ग को नहीं छूयेंगे। हमें तो जैनेतर तामिल-साहित्यमें दिगम्बर मुनियोंके वर्णनको प्रकट करना इष्ट है।

अस्तु तो, तामिलसाहित्यका सर्वप्राचीन समय "संगम-काल" अर्थात् ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दिसे ईस्वी

---

* See, p. [illegible] भावार्थ—तामिल काव्य 'मणिमेकलै' में जैन-सम्प्रदाय और शब्द "श्रमण"—"अमण" तथा उनके विहारों का उल्लेख विशेष है; जिससे तामिल देश में अतीव प्राचीनकाल से जैनधर्म का अस्तित्व सिद्ध है।"

† SSIJ., pt I p 89

पाँचवीं शताब्दि तकका समय है। इस कालकी रचनाओंमें बौद्ध विद्वान् द्वारा रचित काव्य "मणिमेखलै" प्रसिद्ध है। "मणिमेखलै" में दिगम्बर मुनियों और उनके सिद्धान्तों तथा मठोंका अच्छा खासा वर्णन है। जैनदर्शनको इस काव्यमें दो भागोंमें विभक्त किया है—(१) आजीविक और (२) निर्ग्रन्थ।* आजीविक भ० महावीर के समयमें एक स्वतंत्र सम्प्रदाय था, किन्तु उपरान्तकालमें वह दिगम्बर जैनसंप्रदायमें शामिल हो गया था। निर्ग्रन्थ संप्रदायको 'अरुहन' (अर्हत्) का अनुयायी लिखा है, जो जैनोंका द्योतक है। इस काव्यके पात्रों में सेठ कोवलन्की पत्नी कन्नकिके पिता मानाइकन्के विषयमें लिखा है कि 'जब उसने अपने दामादके मारे जानेके समाचार सुने तो उसे अत्यन्त दुःख और खेद हुआ। और वह जैनसंघमें नंगा मुनि होगया†।' इस काव्यसे यह भी प्रगट है कि चोल और पाण्ड्य राजाओंने जैनधर्मको अपनाया था।‡

"मणिमेखलै" के वर्णनसे प्रकट है कि "निर्ग्रन्थगण ग्रामोंके बाहर शीतल मठोंमें रहते थे। इन मठों की दिवालें बहुत ऊँची और लाल रंग से रंगी हुई होती थीं। प्रत्येक मठके साथ एक छोटा सा बगीचा भी होता था। उनके मंदिर तिराहों और चौराहों पर अवस्थित थे। जैनोंने अपने

* BS, p. 15 † Ibid, p. 681
‡ SSIJ., pt. I. p. 47

प्लेटफार्मोंकी रचना करते थे, जिनपरसे निर्ग्रन्थाचार्य अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करते थे। जैनसाधुओंके मठोंके साथ २ जैनसाध्वीयोंके आश्रम भी होते थे। जैन साध्वीयोंका प्रभाव तामिल महिला समाज पर विशेष था। कावेरीपूमपट्टिनम् जो चोल राजाओंकी राजधानी थी, वहां और कावेरी तट पर स्थित उरैयूरमें जैनोंके मठ थे। मदुरा जैनधर्मका मुख्य केन्द्र था। सेठ कोवलन् और उनकी पत्नी कन्नकि जब मदुराको जारहे थे तो रास्तेमें एक जैन आर्यिकाने उन्हें किसी जीवको पीड़ा न पहुँचानेके लिये सावधान किया था, क्योंकि मदुरामें निर्ग्रन्थों द्वारा यह एक महान् पाप करार दिया गया था। वह निर्ग्रन्थगण तीन छत्रयुक्त और अशोक वृक्षके तले बैठाये गये। अर्हत् भगवानकी दैदीप्यमान मूर्तिकी विनय करते थे। वह सब जैन दिगम्बर थे, यह उक्त काव्यके वर्णनसे स्पष्ट है। पुहरमें जब इन्द्रोत्सव मनाया गया तब वहांके राजाने सब धर्मों के आचार्यों को वाद और धर्मोपदेश करनेके लिये बुलाया था। दिगम्बर मुनि इस अवसर पर बड़ी संख्यामें पहुँचे और उनके धर्मोपदेशसे अनेकानेक तामिल स्त्री पुरुष जैनधर्ममें दीक्षित हुये थे।"+

+ Ibid. pp. 47—48 "That these Jains were the Digambaras is clearly seen from their description ...... The Jains took every advantage of the opportunity and large was the number of those that embraced this faith".

"मणिमेखलै" काव्यमें उसकी मुख्य पात्री मणिमेखला एक निर्ग्रन्थ साधुसे जैनधर्मके सिद्धान्तोंके विषयमें जिज्ञासा करती भी बताई गई है*। इस तथा इस काव्य के अन्य वर्णन से स्पष्ट है कि ईस्वीकी आरम्भिक शताब्दियोंमें तामिल देशमें दिगम्बर मुनियों की एक बड़ी संख्या मौजूद थी और तामिल देशमें वे विशेष मान्य तथा प्रभावशाली थे।

शैव और वैष्णव सम्प्रदायोंके तामिल साहित्यमें भी दिगम्बर मुनियोंका वर्णन मिलता है। शैवोंके 'पेरियपुराणम्' नामक ग्रन्थ में मूर्ति नायनारके वर्णन में लिखा है कि कलभ्र वंशके राजा जैसे ही दक्षिण भारतमें पहुंचे वैसे ही उन्होंने दिगम्बर जैनधर्म को अपना लिया। उस समय दिगम्बर जैनों की संख्या वहां अत्यधिक थी और उनके आचार्योंका प्रभाव कलभ्रों पर विशेष था। इस कारण शैवधर्म उन्नत नहीं हो पाया था। किन्तु कलभ्रोंके बाद शैवधर्मको उन्नति करने का अवसर मिला था। उस समय बौद्ध प्रायः निष्प्रभ होगये थे, किन्तु जैन अब भी प्रधानता लिये हुये थे‡। शैवाचार्यों का

* "Manimekalai asked the Nigantha to state who was his God and what he was taught in his sacred books. etc." —SSIJ., pt. I. p. 50

† Ibid, p. 56

‡ "It would appear from a general study of the literature of the period that Buddhism had declined as an active religion but Jainism had still its

अलग रहते थे—उनसे अत्यधिक सम्पर्क नहीं रखते थे। स्त्रियोंसे तो वे बिल्कुल दूर २ रहते थे। नासिका-स्वरसे वे प्राकृत व अन्य मंत्र बोलते थे। ब्राह्मणों और उनके वेदोंका वे हमेशा खुला विरोध करते थे। कड़ी धूपमें वे एक स्थानसे दूसरे स्थान पर वेदोंके विरुद्ध प्रचार करते [illegible] विचरते थे। उनके हाथमें पीछी, चटाई और एक कूंची होती थी। इन दिगम्बर मुनियोंको सम्बन्दर ह्वेनसांग बन्दरोंकी उपमा देता है; किन्तु वे सैद्धान्तिक वाद करनेके लिये बड़े लालायित थे और उन्हें विपक्षीको परास्त करनेमें आनन्द आता था। केशलोंच वे मुनिगण करते थे और स्त्रियोंके सम्मुख नग्न उपस्थित होनेमें उन्हें लज्जा नहीं आती थी। भोजन लेनेके पहले वे अपने शरीरकी शुद्धि नहीं करते थे (अर्थात् स्नान नहीं करते थे)। मंत्रशास्त्रको वे खूब जानते थे और उसकी खूब तारीफ़ करते थे।"*

तिरुज्ञानसम्बन्दर और अप्परने भी उपरोक्त प्रमाण दिगम्बर मुनियोंका वर्णन किया है, यद्यपि वह द्वेषको लिये हुये है, परंतु तोभी उससे उस कालमें दिगम्बर मुनियोंके बाहुल्य रूपमें सर्वत्र विहार करते, विकट तपस्वी और लब्धवादी होनेका समर्थन होता है।

दक्षिण भारतकी 'नन्द्याल कैफियत' (Nandyala Kaiphiyat) में लिखा है † कि "जैनमुनि अपने सिरों पर

---

* SSIJ., pt. I pp. 68-70 † Ibid., pt. II pp. 10-11

उसने अपने गुरुओंसे राजाके संबंधमें पूंछा। जैनगुरु ज्योतिषके विद्वान विशेष थे, उन्होंने राजाका सब पता बता दिया। राजा जब लौटा तो रानीने उसको बताया कि वह कहां गया था और प्रार्थना की कि वह उसेभी बनारस ले जाया करे। राजाने स्वीकार कर लिया। वह रानीभी बनारस जाने लगी। एक रोज मार्गमें वह मासिकधर्मसे होगई। फलतः जवाहरोंकी वह विशेषता नष्ट होगई। राजाको उसपर बड़ा क्रुद्ध हुआ और उसने जैनोंको कष्ट देना प्रारंभ कर दिया।*" इस कहानीसे विधर्मी राजाओंके राज्यमें भी दिगम्बर मुनियोंका प्रतिभाशाली होना प्रकट है।

अरुलनन्दि शिवाचार्य कृत "शिवज्ञानसिद्धियार" में परपक्ष संप्रदायोंमें दिगम्बर जैनोंका "क्षपणक" उल्लेख है†। तथा "हालास्यमाहात्म्य" में मदुराके शैवों और दिगम्बर मुनियोंके वादका वर्णन मिलता है‡।

इस प्रकार तामिलसाहित्यके उपरोक्त वर्णनसे भी दक्षिणभारतमें दिगम्बर मुनियोंका प्रतिभाशाली होना प्रमाणित है। वे वहां एक अत्यन्त प्राचीनकालसे धर्मप्रचार कर रहे थे।

---

* SSLI., pt. II pp. 27—28 † SC., p 248
‡ IHQ., Vol. IV. p. 564

[२३]

भारतीय पुरातत्व और दिगम्बर मुनि ।

"The prehistoric civilisation of the Indus Valley was something quite different from the Vedic civilisation." "On the eve of the Aryan immigration the Indus Valley was in possession of a civilised and warlike people."

—R. B. Ramaprasad Chanda, †

> मोहन-जो-दरा का पुरातत्व और दिगम्बरत्व।

भारतीय पुरातत्वमें सिन्धुदेशके मोहन जोदरो और पंजाब के हरप्पा नामक स्थानोंसे प्राप्त पुरातत्व अनिर्वचनीय है। वह ईस्वी सन् से तीन-चार हजार वर्ष पहलेका अनुमान किया गया है। जिन विद्वानोंने उसका अध्ययन किया है, वह इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि सिन्धुदेशमें उस समय एक सभ्य और लड़ाकू प्रकृतिके मनुष्य रहते थे, जिनका धर्म और सभ्यता वैदिक धर्म और सभ्यतासे बिलकुल भिन्न थी। एक विद्वान ने उन्हें "व्रात्य" सिद्ध किया है‡ और उनके अनुसार "व्रात्य" वह वेद-विरोधी संप्रदाय था "जिसके साथ हिन्दों द्वारा उनकी सजातीय पत्नियों से उत्पन्न हुए थे, किन्तु जो

---

† SSCIJ., p. 1 & 25   ‡ Ibid. pp. 25–31

(वैदिक) धार्मिक क्रियाओंका पालन न कर सकनेके कारण क्षत्रियोंसे अलग कर दिये गये थे।" (मनु १०।२०) वह मुख्यतः व्रात्य थे। मनु इन व्रात्य क्षत्रियोंसे ही झल्ल, मल्ल, लिच्छवि, नाट, करण, खस और द्राविड़ वंशोंकी उत्पत्ति बतलाते हैं। (मनु १०।२२) यह पहलेभी लिखा जा चुका है। सिन्धुदेशके उपरोक्त मनुष्य इसी प्रकारके व्रात्य थे और वे ध्यान तथा योगका स्वयं अभ्यास करते थे और योगियोंकी मूर्तियोंकी पूजा करते थे। मोहन-जो-दड़ो से जो कतिपय मूर्तियां मिली हैं उनकी दृष्टि जैनमूर्तियोंके समान 'नासाग्रदृष्टि' है। किन्तु ऐसी जैनमूर्तियां प्रायः ईस्वी पहली शताब्दि तक की ही मिलती विद्वान् प्रकट करते हैं+। यद्यपि जैनोंकी मान्यताके अनुसार उनके मंदिरोंमें बहुप्राचीनकालकी मूर्तियां मौजूद हैं। इस पर, हाथीगुफाके शिलालेखसे कुमारी पर्वत पर नन्दकालकी मूर्तियोंका होना प्रमाणित है× तथा मथुराके 'देवों द्वारा निर्मित जैनस्तूप' से भगवान पार्श्वनाथके समयमें भी ध्यानाकृतिमय मूर्तियोंका होना सिद्ध है÷। इसके अतिरिक्त प्राचीन जैन साहित्य तथा बौद्धोंके उल्लेखसे भ० पार्श्वनाथ और भ० महावीरके पहलेके जैनोंमेंभी ध्यान और योगाभ्यासके नियमोंका होना प्रमाणित है। 'संयुक्तनिकाय' में जैनोंके अवितर्क और अविचार श्रेणीके ध्यानोंका उल्लेख

+ Ibid. pp 25—26   × JBORS.
÷ वीर वर्ष ४ पृ० ५४।

द्योतक है। योगियोंकी पोशाकके वर्णनमें कहा गया है कि वे एक पगड़ी (सिरबन्द), एक लाल कपड़ा और एक चांदी का आभूषण 'सिरक' नामक पहनते थे। उक्त मूर्तिकी पोशाकभी इसी ढंगकी है। माथे पर एक पट्ट रूप पगड़ी जिसके बीचमें एक आभूषण जड़ा है, वह पहने हुये प्रगट है और कपड़ेसे निकला हुआ एक बूटेदार कपड़ा वह ओढ़े हुये हैं। इस अवस्थामें इन मूर्तियोंको योग मुद्राओंकी मूर्तियां मानना ही ठीक है और इस तरह पर यह सिद्ध है कि प्राग्-ऐतिहासिक एक प्राचीन कालमें अवश्यही एक वेद-विरोधी संप्रदाय था, जिसमें योगाभ्यासी दिगम्बर मुनिके अनुरूप थे। अतः प्रकारान्तरसे भारतका सिंधुदेशवर्ती सर्वप्राचीन पुरातत्व भी दिगम्बर मुनि और उनकी योगमुद्राका पोषक है *।

अशोक के शासन
लेख निर्ग्रन्थ

सिंधु देशके पुरातत्वके उपरांत सम्राट् अशोक द्वारा निर्मित पुरातत्व ही सर्व प्राचीन है। यह पुरातत्वभी दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वका द्योतक है। सम्राट् अशोकने अपने एक शासन लेखमें आजीविक साधुओं के साथ निर्ग्रन्थ साधुओंका भी उल्लेख किया है ‡।

---

† SPCIV., Plate I, Fig. b

* 'SPCIV' pp 25—33 में मोहन जोदड़ोकी मूर्तियोंको जिन मूर्तियोंके समान और उनका पूर्वरूप प्रगट किया गया है।

‡ स्तम्भलेख नं० ७

इस प्रकार खण्डगिरि-उदयगिरिके शिलालेखोंसे ईस्वी-पूर्व दूसरी शताब्दिमें दिगम्बर मुनियोंके कल्याणकारी अस्तित्वका पता चलता है।

खण्डगिरि-उदयगिरि पर जो मूर्त्तियां हैं, वे प्राचीन और नग्न हैं और उनसे दिगम्बरत्व तथा दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वका पोषण होता है। वह स्थान भी दिगम्बर मुनियोंका मान्य तीर्थ है।

मथुराका पुरातत्व और दिगम्बर मुनि

मथुराका पुरातत्व ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दि तक का है और उससे भी दिगम्बर मुनियोंका जनतामें बहुमान्य और कल्याणकारी होना प्रगट है। वहांकी प्रायः सब ही प्राचीन मूर्त्तियां नग्न-दिगम्बर हैं। एक स्तूपके चित्रमें जैनमुनि नग्नपीछी व कमण्डलु लिये दिखाये गयेहैं*। उन पर के लेख दिगम्बर मुनियोंके द्योतक हैं, यथाः—

"नमो अर्हतो वर्धमानस आराये गणिकायं लोण शोभि-काये धितु शमण साविकाये नादाये गणिकाये वसु (ये) आर्हतो देविकुल आयाग सभा प्रपाशिल (1) पटो पतिस्टापितो निगन्थानम् अर्हता यतनेसहामातरे भगिनिये धितरे पुत्रेण सर्वेन च परिजनेन अर्हत् पुजाये।"

अर्थात्—"अर्हत् वर्द्धमान को नमस्कार। श्रमणोंकी श्राविका आरायगणिका लोणशोभिकाकी पुत्री नादाय गणिका

* जैहिस्मा०, वर्ष ३, किरण ४ पृ० १९३

आर्य जयभूतिकी शिष्या आर्य संगमिकाकी प्रति शिष्या वसुला की इच्छानुसार (अर्पित हुई थी)"*

इससे दिगम्बर मुनि जयभूतिका उल्लेख 'आर्य' विशेषणसे हुआ है। ऐसे ही अन्य उल्लेखोंसे वहांका पुरातत्व तत्कालीन दिगम्बर मुनियोंके सम्मानीय व्यक्तित्वका परिचायक है।

अहिच्छत्र (बरेली) के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि।

अहिच्छत्र (बरेली) [illegible] एक समय नागवंशी राजाओंका राज्य था और वे दिगम्बर जैन धर्मानुयायी थे। वहां के कटारी खेड़ा की खुदाई में डा० फुहरर सा० ने एक समूचा सभामंदिर खुदवा निकलवाया था। वह मंदिर ई० पूर्व प्रथम शताब्दिका अनुमान किया गया है और वह श्री पार्श्वनाथजीका मन्दिर था। इसमें से मिली हुई मूर्तियां सन् ९६ से १५२ तक की हैं, जो नग्न हैं। यहां एक ईंटों का बना हुआ प्राचीन स्तूप भी मिला था, जिसके एक स्तम्भ पर निम्न प्रकार लेख था:—

"महाचार्य इन्द्रनन्दि शिष्य पार्श्वयतिस्स कोट्टारी।"

आचार्य इन्द्रनन्दि उस समय के प्रख्यात् दिगम्बर मुनि थे।

---

* वीर, वर्ष ३ पृ० ११०

† संप्राजैस्मा०, [illegible] पृ० ८१-८२ "(General Cunningham) found a number of fragmentary naked Jain statues,

नचैत्साधु—संसर्गपूते पुण्ये मल्लग्रामिनाम्नि मल्लपुर-गुरु निवेशमिहिरोमम्मे महार्ये तस्मिन् कलशोम: पुरुजनमतिमपम व्यवहारत्वान्त सौम्यो मद्रस्तस्यासम्भो—पृष्ठद्विज—गुरुप-लिए मागका प्रोतिमान्या ॥ इत्यादि"

भाव यही है कि संवत् १९९ में प्रसिद्ध तथा साधुओं के संसर्गसे पवित्र मल्लुक ग्राममें ब्राह्मण-गुरु और यतियों को प्रिय भद्र नामक विप्र रहते थे, जिन्होंने पांच अर्हत्-बिम्ब निर्मित कराये थे। इससे स्पष्ट है कि उस समय मल्लुक ग्राम में दिगम्बर मुनियोंका एक बृहत् संघ रहता था।

राजगृह (बिहार) के पुरातत्व में दि० मुनियों की गुफा।

राजगृह (बिहार) का पुरातत्वमयी गुफाओंमें वहाँ दिगम्बर मुनियोंके बाहुल्यका परिचायक है। वहां पर गुफाओंकी निर्मित अनेक दिगम्बर जैनमूर्तियां मिलती हैं* और जिन शिलालेख वहां पर दिगम्बर जैन संघका अस्तित्व प्रमाणित करता है:—

"निर्वाणलाभाय तपस्वि योग्ये शुभेगुहेऽर्हत्प्रतिमाप्रतिष्ठे।
आचार्यरत्नम् मुनि वैरदेवा विमुक्तये कारय दीर्घतेजः॥"

अर्थात्—"निर्वाणकी प्राप्तिके लिये तपस्वियोंके योग्य और श्री अर्हन्तकी प्रतिमासे प्रतिष्ठित शुभगुफामें मुनि वैरदेव को मुक्ति के लिये परम तेजस्वी आचार्य पद रूपी रत्न प्राप्त हुआ यानि मुनि वैरदेव को मुनि संघ ने आचार्य स्थापित किया।" इस शिलालेखके निकट ही एक नग्न जैन मूर्तिका

* SPOIV., plate II (b)

चिन्ह साथ उकेरा हुआ है, जिससे इसका सम्बन्ध दिगम्बर मुनियों से स्पष्ट है ‡।

बङ्गाल के गुप्तकाल में दिगम्बर मुनि।

गुप्तकाल और उसके बाद कई शताब्दियों तक बङ्गाल, आसाम और ओड़ीसा प्रान्तोंमें दिगम्बर जैनधर्म बहु प्रचलित था। अब जैन मूर्तियां वहां व कई जिलोंमें बिखरी हुई मिलती हैं। पहाड़पुर (राजशाही) गुप्तकालमें एक जैनकेन्द्र था †। वहाँसे प्राप्त एक ताम्र लेख दिगम्बर मुनियों के संघका द्योतक है। उसमें उल्लिखित है कि "गुप्तसं० १५९ (सन् ४७८ ई०) में एक ब्राह्मण दम्पतिने निर्ग्रन्थ विहार की पूजा के लिये अक्षयनीवी रूपमें भूमिदान दी। निर्ग्रन्थाचार्य गुहनन्दि और उन के शिष्यों द्वारा अधिष्ठित था।" +

कदम्ब-राजाओं के राज्यमें दिगम्बर मुनि

देवगिरि (धारवाड़) से प्राप्त कादम्बवंशी राजाओं के ताम्रपत्र ईस्वी पांचवीं शताब्दिमें दिगम्बर मुनियोंके वैभव को प्रकट करते हैं। एक लेख में है कि महाराजा कदम्ब श्री कृष्णवर्मके राजकुमार पुत्र देववर्माने जैन मन्दिरके लिये यापनीय संघके दिगम्बर मुनियोंको एक खेत दान दिया था। दूसरे लेखसे प्रगट है कि

‡ बंबिओजैस्मा०, पृ० ९६

† IHQ., Vol. VII p. 441

+ Modern Review, August 1931, p. 150

चालुक्य-राजा विक्रमादित्यके राज्य में दिगम्बर मुनि।

कलोसर (धारवाड़) की संस्कृतके शिलालेखसे प्रगट है कि शंखवस्तीका उद्धार पश्चिमीय चालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य द्वितीय (शाका ६५६) में कराया था और जिनपूजाके लिये श्री देवेन्द्र महारकके शिष्य मुनि एकदेवके शिष्य जयदेव पंडितको भूमिदान दी थी। इससे विक्रमादित्यका दिगम्बर मुनियोंका भक्त होना प्रगट है। यहींके एक अन्य लेखसे मूलसंघके श्री रामचन्द्राचार्य और श्रीविजयदेव पंडिताचार्यका पता चलता है।* सारांशतः यहां उस समय एक अच्छा दिगम्बर जैनसंघ विद्यमान था।

एलोरा की गुफाओं में दिगम्बर मुनि

ईस्वी आठवीं शताब्दिकी निर्मित एलोराकी जैन गुफायें भी उस समय दिगम्बर मुनियोंके विहार और धर्म प्रचारको प्रगट करती हैं। वहांकी इन्द्रसभा नामक गुफामें जैन मुनियोंके ध्यान करने और उपदेश देने योग्य कई स्थान हैं और उसमें अनेक नग्न मूर्तियां अंकित हैं। श्री बाहुबलि गोमट्टस्वामीकी भी यहां नग्न मूर्ति है। "जगन्नाथसभा"— "छोटा कैलास" आदि गुफायें भी इसी ढंगकी हैं और उनसे तत्कालीन दिगम्बरत्वकी प्रभावनाका परिचय मिलता है।†

---

* Ibid. pp. 124—125
† Ibid., pp. 169-171

जिसको उसकी रानी चिवलब्बाने कुन्दोमें स्थापित किया था। राजा कुट्टुग मयूरमण्डल पर राज्य करता था और श्री नागदेव का शिष्य था। रानी चिवलब्बा दिगम्बर मुनियों और आर्यिकाओं की परम भक्त थी। उसने ही आर्यिकाओंको समाधिमरण कराया था‡। इससे कुन्दोमें दिगम्बर मुनियोंका राजमान्य होना प्रकट है।

कुम्भोज बाहुबलि पहाड़ (कोल्हापुर) श्री दिगम्बर मुनि बाहुबलिके कारण प्रसिद्ध है, जो वहां हो गये हैं और जिनकी चरण पादुका वहां मौजूद हैं*।

कोल्हापुर के पुरातत्व में दिग० मुनि और शिलाहार राजा

कोल्हापुरका पुरातत्व दिगम्बर मुनियोंके उत्कर्षका द्योतक है। वहांके इरविन म्यूजियममें एक शिलालेख शाका दसवीं शताब्दिका है जिससे प्रकट है कि कुन्तलनायक त्रैलोक्यमल्ल राजा जगदेक मल्लके दूसरे वर्ष के राज्यमें एक ग्राम धर्मार्थ दिया था। उस समय यापनीयसंघ पुन्नागवृक्षमूलगण रान्द्रान्तादिके आचार्य परमविद्वान मुनि कुमार कीर्तिदेव विराजित थे×। उपरान्त कोल्हापुरके शिलाहार वंशी राजाओं दिगम्बर मुनियोंके परमभक्त थे। वहांके एक शिलालेखसे प्रकट है कि "शिलाहार वंशीय महामण्डलेश्वर विजयादित्यने माघ

---

‡ बंप्राजैस्मा०, पृ० १२०

* बंप्राजैस्मा०, पृ० १२१   × जैनमित्र वर्ष ११ अङ्क ५ पृ०७२

इससे उस समय के दिगम्बर मुनियों की बाहुल्यता का पता चलता है।

ग्वालियर और दूबकुंड के पुरातत्व में दिगम्बर मुनि—ग्वालियर का पुरातत्व ईस्वी ग्यारहवीं से सोलहवीं शताब्दि तक वहां पर दिगम्बर मुनियों के अभ्युदय को प्रगट करता है। ग्वालियर किले में इस जमाने की बनी हुई अनेक दिगम्बर मूर्तियां हैं, जो वहां के दिगम्बरत्व प्रभाव की द्योतक हैं। उपरान्त वहां लेख भी हैं, जिनमें दिगम्बर गुरुओं का वर्णन मिलता है+। ग्वालियर के दूबकुण्ड नामक स्थान से मिला हुआ एक शिलालेख सन् १०८८ में दिगम्बर मुनियों के संघ का परिचायक है। यह लेख महाराज विक्रमसिंह कच्छवाहा का लिखाया हुआ है, जिसमें शान्तिषेण मुनि को मन्त्रकलादि में दक्ष प्रगट किया था और जो उनके गुरुजिनालय के लिये प्रसिद्ध था। इस राजाने दूबकुण्ड के जैनमन्दिर के लिये दान दिया था और दिगम्बर मुनियों का सम्मान किया था। ये दिगम्बर मुनिगण श्रीलाट-वागटगण के थे और इनके नाम क्रमशः (१) देवसेन (२) कुलभूषण (३) श्रीदुर्लभसेन (४) शान्तिषेण और (५) विजयकीर्ति थे। इनमें श्री देवसेनाचार्य ग्रंथरचना के लिये प्रसिद्ध थे और श्रीशान्तिषेण अपनी वादकला से विपक्षियों का मद चूर्ण करते थे×।

+ मजैस्मा०, पृ० ६५-६६

× मजैस्मा०, पृ० ७१-८३—[illegible]

खजराहा के लेखों में दि० मुनि—
खजराहाके जैन मन्दिरमें एक लेख संवत् १०११ का है। उस से दिगम्बर मुनि श्री वासवचन्द्र (महाराज गुरु श्री वासवचन्द्र) का पता चलता है। वह धाङ्गराजा द्वारा मान्य सर-दार पाहिलके गुरु थे।*

झालरापाटनमें दि० मुनियोंकी निषिधिकायें— झालरापाटन शहरके निकट एक पहाड़ी पर दिगम्बर मुनियोंके कई समाधिस्थान हैं। उन परके लेखोंसे प्रगट है कि सं० १०६६ में श्री नेमिदेवाचार्य और श्री बलदेवाचार्यने समाधिमरण किया था।†

अलवरराज्य के लेखों में दि० मुनि—
अलवर राज्यके नौगामा ग्राममें स्थित दि० जैन मन्दिरमें श्री अनन्तनाथ जी की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है जिसके आसन पर लिखा है कि सं० ११७५ में आचार्य विजयकीर्तिके शिष्य नरेन्द्रकीर्तिने उसकी प्रतिष्ठा की थी।‡

[illegible] ...गुरुर्नवसेनः। [illegible] ...(... ...[illegible] ...। [illegible]"

* मप्राजैस्मा०, पृ० ११०

† Ibid p. 191

‡ Ibid. p. 195

देवगढ़ (झांसी) के पुरातत्वमें दि० मुनि— देवगढ़ (झांसी) का पुरातत्व यहां तेरहवीं शताब्दि तक दिग- म्बर मुनियोंके अस्तित्वका द्योतक है। नग्न मूर्तियोंसे सारा पहाड़ ओत प्रोत है। वहां एकके लेखोंसे प्रगट है कि ११ वीं शताब्दिमें वहां एक गुणदेवाचार्य नामक प्रसिद्ध मुनि थे। सं० १२०६ के लेखमें दिगम्बर गुरुओंकी भक्त आर्यिका धर्मश्रीका उल्लेख है। सं० १२२४ का शिलालेख पंडित मुनिका वर्णन करता है। सं० १२०७ में यहां आचार्य जयकीर्ति प्रसिद्ध थे। उनके शिष्योंमें भावनन्दि मुनि तथा कई आर्यिकायें थीं। धर्म- नन्दि, कमलदेवाचार्य, नागसेनाचार्य, इन्द्रनन्दि, भावनन्दि, श्रीचन्द्रनन्दि और गुणनन्दि नामक दिगम्बर मुनियोंका भी उल्लेख मिलता है। सं० १२१९ की मूर्ति मुनि—आर्यिका— श्रावक—श्राविका, इसप्रकार चतुर्विधसंघके लिये बनीथी+। इससे स्पष्ट है कि देवगढ़में अनवरत कई शताब्दियों तक दिगम्बर मुनियोंका [illegible] रहा था।

बिजोलिया (मेवाड़) में दिग० साधुओं की मूर्तियां— बिजोलिया (पार्श्वनाथ—मेवाड़) का पुरातत्व वहां पर दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वको प्रगट करता है। यहां पर कई एक दिगम्बर मुनियों की नग्न प्रतिमायें बनी हुई हैं। एक मानस्तम्भ पर तीर्थंकरोंकी मूर्तियोंके साथ दिग- म्बर मुनिगणके [illegible] व [illegible] चिन्ह अंकित हैं। दो मुनि-

---

+ देजै०, पृ० ११—१४

राख शास्त्रव्याख्यान करते प्रगट किये हैं। उनके पास कमंडल पोथी रक्खे हुये हैं। वे अजमेरके चौहान राजाओं द्वारा मान्य थे×। शिलालेखोंसे प्रगट है कि वहाँ पर श्री मूलसङ्घके दिगम्बराचार्य श्री वसन्तकीर्तिदेव, विशालकीर्तिदेव, मदनकीर्तिदेव, धर्मचन्द्रदेव, रत्नकीर्तिदेव, प्रभाचन्द्रदेव, पद्मनन्दिदेव और शुभचन्द्रदेव विद्यमान थे*। इनको चौहान राजा पृथ्वीराज और सोमेश्वरने जैनमन्दिरके लिये ग्राम भेंट किये थे+। सारांशतः चौहानोंमें एक समय दिगम्बर मुनि प्रभावशाली हो गये थे।

अंजनेरीकी गुफाओंमें दि० मुनि—

अंजनेरी और चाँदवड़ (नासिक जिला) की जैन गुफायें वहाँ पर ११ वीं—१२ वीं शताब्दिमें दिगम्बर मुनियोंके अस्तित्वको प्रगट करती हैं। पंकुलेना गुफाओंका पुरातत्व भी इसी बात का समर्थक है†।

बेलगामके पुरातत्वमें राजमान्य दि० मुनि—

बेलगामका पुरातत्व वहाँपर १२ वीं—१३ वीं शताब्दियोंमें दिगम्बर मुनियोंके महत्वको प्रगट करते हैं, जो राजमान्य थे। यहाँ के रट्टराजाओंने जैनमुनियोंका सम्मान किया था, यह उनके लेखोंसे प्रगट है।

× दिजैडा०, [illegible] ४०१   + मजाजैस्मा०, पृ० १११
* मप्रा०, पृ० ११२   † बंप्राजैस्मा०, पृ० २०—२१

संघके तीन गुरु महाभागी थे, जिनके एक शिष्य सैद्धांतिक नेमिचन्द्र थे। श्रीनेमिचन्द्रके शिष्य शुभचन्द्र थे, जिन्होंने दिगम्बर धर्मकी बहुत उन्नति की थी। उनके शिष्य श्रीललितकीर्ति थे‡।

बेलगाम ज़िलेमें स्थित रायबाग ग्राममेंभी एक जैन शिलालेख रट्टराजा कार्तवीर्य का है। उससे विदित है कि कार्तवीर्य ने भ० शुभचन्द्र को शाका ११२४ में रट्टों के उन जैनमंदिरोंके लिये दान दियाथा जिन्हें उसकी माता चन्द्रिकादेवीने स्थापित किया था+। इससे चन्द्रिकादेवीका दि० मुनियों और तीर्थंकरोंका भक्त होना प्रगट है।

बीजापुर किलेकी मूर्तियां दि० मुनियों की द्योतक—बीजापुरके किलेकी दिगम्बर मूर्तियां सं० १००१ में श्री विजयसूरि द्वारा प्रतिष्ठित हैं×। उनसे प्रकट है कि बीजापुरमें उस समय दिगम्बर मुनियोंकी प्रधानता थी।

तेवरी की दि० मूर्ति—तेवरी (जबलपुर) के तालाबमें स्थित दि० जैन मंदिरकी मूर्तिपर बारहवीं शताब्दि का लेखहै कि "माघनन्दिको की रोज़ नमन करती है"÷। इससे वहां पर जैनमुनियोंका राजमान्य होना प्रगट है।

दिल्ली के मूर्ति लेखों में दि० मुनि—दिल्ली नयामंदिर कटघरकी मूर्तियों परके लेख १५ वीं शता-

---

‡ Ibid pp 82—83

+ Ibid p. 87 × Ibid p. 108 ÷ दिजैप्रा०, पृष्ठ २८०

दक्षिण भारतका पुरातत्व और दि० मुनि- अच्छा तो अब दक्षिण भारतके शिलालेखादि पुरातत्व पर एक नज़र डाल लीजिये। दक्षिण भारतकी पाण्डवमलय आदि गुफाओंमें पुरातत्व एक अति प्राचीनकालमें वहांपर दिगम्बर मुनियोंका अस्तित्व प्रमाणित करता है। अनुमलयमलै (हारमलेर) की गुफाओंमें दिगंबर मुनियोंका एक प्राचीन आश्रम था। वहांपर दोबंबाव दिगम्बर मूर्तियां अंकित हैं। दक्षिण देश के शिलालेखोंमें मदुरा और रामनद जिलोंके प्राप्त प्रसिद्ध ब्राह्मीलिपिके शिलालेख अति प्राचीन हैं। यह अशोककी लिपिमें लिखे हुये हैं। इसीलिये इनको ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दिका समझना चाहिये। यह जैनमंदिरोंके पास बिखरे हुये मिले हैं और इनके निकट ही तीर्थंकरोंकी नग्न मूर्तियां भी थीं। अतः इनका सम्बन्ध जैनधर्मसे होना बहुत कुछ संभव है। इससे स्पष्ट है कि ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि में ही जैनमुनि दक्षिण भारतमें प्रचार करने लगे थे*। इन शिलालेखोंके अतिरिक्त दक्षिण भारतमें दिगम्बर मुनियोंसे संबन्ध रखने वाले सैकड़ों शिलालेख हैं। उन सबको यहां उपस्थित करना असम्भव है। हां, उनमें से [illegible] एक का परिचय हम यहांपर अंकित करना उचित समझते हैं। अकेले श्रवण बेलगोलमें ही इतने अधिक शिलालेख हैं कि उनका सम्पादन एक बड़ी पुस्तकमें किया गया है। अस्तु;

*SSIJ., pt I pp 33—35

श्रवण बेलगोलके शिलालेखों में प्रसिद्ध दिगम्बर साधुगण—श्रवण बेलगोलके शिलालेखों से ही दिगम्बर मुनियोंका महत्व प्रमाणित करना श्रेष्ठ है। शक सं० ५२२ के शिलालेखसे यहां पर श्रुतकेवली भद्रबाहु और मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तका परिचय मिलता है। इन दोनों महानुभावोंने दिगम्बर-वेषमें श्रवणबेलगोलको पवित्र किया था *। शक सं० ६२२ के लेखमें मौनिगुरुकी शिष्या नागमति को तीन मासका व्रत धारण करके समाधिमरण करते लिखा है। इसी समयके एक अन्य लेखमें चारित्र श्री नामक मुनिका उल्लेख है†। धर्मसेन, बलदेव, पट्टिनिगुरु, उग्रसेन गुरु, गुणसेन, पेरुमालु, अक्षितबल, गोवर्द्धन, पुष्पसेन आदि दिगम्बर मुनियोंका अस्तित्व इसी समय प्रमाणित है ‡। शक सं० ८९६ के लेखसे प्रगट है कि राजा मारसिंहने अनेक युद्धों में लड़कर अपना भुजविक्रम प्रगट किया था और अंतमें अजितसेनाचार्यके निकट बङ्कापुरमें समाधिमरण किया था। +

तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति—शक संवत् १०८५ के लेखसे तार्किकचक्रवर्ती श्री देवकीर्ति मुनिका तथा उनके शिष्य लक्खनन्दि, माधवेन्दु और त्रिभुवनमल्लका पता चलता है। उनके विषयमें कहा है :—

---

* जैनशि०, पृ० १-२   † Ibid p. 8
‡ Ibid pp 4—18   + Ibid p. 20

"सुतर्केतम. कपिल-चार्वाक्-बन्धोल-बनवे
चार्वाक-आदि-मदमत्तर-वादवायवे ।
बौद्धोप्रवादिविमिरमविभेदमानवे
श्रीदेवकीर्तिमुनये कविवादिवाग्मिने ।"

× × ×

"चतुर्मुखं चतुर्वक्त्रनिर्गमागमदुस्सहा ।
देवकीर्तिमुखाम्भोजे नृत्यतीति सरस्वती ।"

चतुर्मुख मुनि देवकीर्तिको उनके समयके अद्वितीय कवि, तार्किक और वक्ता थे। वे महामण्डलाचार्य और विद्वान् थे और उनके समक्ष सांख्य, चार्वाक, नैयायिक, वेदान्ती, बौद्ध आदि सभी दार्शनिक हार मानते थे।*

महाकविमुनि श्री श्रुतकीर्ति—उक्त समयके एक अन्य शिलालेखमें मुनि देवकीर्तिकी गुरुपरम्परा दी है, जिससे प्रकट है कि मुनि कनकनन्दि और देवचन्द्रके भ्राता श्रुतकीर्ति त्रैविद्य मुनिने देवेन्द्र सदृश विपक्षवादियोंको पराजित किया था और एक चमत्कारी काव्य राघव-पाण्डवीयकी रचना की थी, जो आदिसे अन्तको व अन्तसे आदिको, दोनों ओर पढ़ा जा सके। इससे प्रकट है कि उपर्युक्त मुनि देवकीर्तिके शिष्य पाड्य-नरेश मार्गसिंह प्रभाकर प्रसिद्ध सेनापति और मंत्री हुल्लप थे।†

श्री शुभचन्द्र और रानी जक्कणब्बे—शक सं० १०४५ के लेखमें मंत्री नागदेवके गुरु श्री नयकीर्ति

---

* जैशिसं०, पृ० २१-२२ † Ibid pp. 24—30

प्रशंसा है। वह दिगम्बराचार्य श्री शुभचन्द्रजी की शिष्या थीं। इन्हीं आचार्यकी एक अन्य धर्मात्मा शिष्या राजमल्ल-मंत्रि चामुण्डरायकी स्त्री देवमति थी÷। शक सं० १०६८ के लेखमें अन्य दिगम्बर मुनियोंके साथ श्री शुभकीर्ति आचार्य का उल्लेख है, जिनके सम्मुख वादमें बौद्ध, मीमांसकादि कोई भी नहीं ठहर सकता था। इन्हीं श्री प्रभाचन्द्रजी की शिष्या विष्णुवर्द्धन राजाकी पटरानी शान्तलदेवीकी धर्म-परायणताका भी उल्लेख है।+

शक सं० १०७० के लेखमें श्री महावीर स्वामीके बाद दि० मुनियोंकी शिष्यपरंपराका बखान है, जिसमें श्रुतकेवली भद्रबाहु और सम्राट् चन्द्रगुप्तमौर्यका भी उल्लेख है। कुन्द-कुन्दाचार्यके चारित्र-गुणादिका परिचय भी एक श्लोक द्वारा कराया गया है।

श्री कुन्दकुन्द और समन्तभद्र आचार्य

इन आचार्योंको एक अन्य शिलालेखमें मूलसंघका अग्रणी लिखा है। उन्होंने चारित्रकी श्रेष्ठताके चारणऋद्धि प्राप्त की थी, जिसके कारण वह पृथ्वीसे चार अंगुल ऊपर चलते थे×। श्री समन्तभद्राचार्य जी के विषयमें कहा गया है :—

"पूर्वं पाटलिपुत्र-मध्य-नगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालव-सिन्धु-ठक्क विषये कांचीपुरे वैदिशे।

÷Ibid., pp 67-70 +Ibid., pp 80-81
×Ibid., Intro, p. 140

प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं संकटं
वादार्थी विचराम्यहन्नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ॥७॥
अवटु-तटमटति झटिति स्फुट-पटु-वाचाट धूर्जटेरपि जिह्वा ।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति तव सदसि भूप कास्थान्येषां ॥८॥"

कहा जाता है कि श्री समन्तभद्रस्वामीने पहले पाटलिपुत्र नगरमें वादभेरी बजाई थी। उपरान्त वह मालव, सिन्धु, पंजाब, कांचीपुर, विदिशा आदिमें वाद करते हुये करहाटक नगर (कराड) पहुँचे थे और वहाँ की राजसभामें वाद-घोषणा की थी। कहते हैं कि वादी समन्तभद्रकी उपस्थितिमें चतुराईके साथ स्पष्ट, शीघ्र और बहुत बोलने वाले धूर्जटिकी जिह्वा ही जब शीघ्र अपने बिलमें घुस जाती है—उसे [illegible] बोल नहीं आता—तो फिर दूसरे विद्वानोंकी तो कथा ही क्या है? उनका अस्तित्व तो समन्तभद्रके सामने कुछभी महत्व नहीं रखता। सचमुच समन्तभद्राचार्य जैनधर्मके अनुपम रत्न थे। उनका सर्वत्र अनेक शिला लेखोंमें गौरवरूपसे किया गया है। तिरुमकूडलु नरसीपुर ताल्लुकेके शिलालेख नं० १०५ के जिस पद्यमें उनके विषयमें ठीक ही कहा गया है कि:—

समन्तभद्रस्संस्तुत्यः कस्य न स्यान्मुनीश्वरः ।
वाराणसीश्वरस्याग्रे निर्जिता येन विद्विषः ॥

अर्थात्—"वे समन्तभद्र मुनीश्वर जिन्होंने वाराणसी (बनारस) के राजाके सामने शत्रुओंको—मिथ्यैकान्तवादियों को—परास्त किया है, किसके स्तुतिपात्र नहीं हैं? वे सभीके द्वारा स्तुति किये जानेके योग्य हैं।"

देशीयगणके आचार्य गोपनन्दि बहुत प्रसिद्ध हुए थे। 'वह बड़े भारी कवि और तर्कप्रवीण थे। उन्होंने जैनधर्मकी, वैसी ही उन्नति की थी जैसी गङ्गनरेशोंके समयमें हुई थी। उन्होंने धूर्जटिकी जिह्वाको भी स्थगित कर दिया था।' देशदेशान्तरमें विहार करके उन्होंने सांख्य, बौद्ध, चार्वाक, जैमिनि, लोकायत आदि विपक्षी मतोंको हीनप्रभ नष्ट किया था। वह परम-तपके निधान, भव्यजनके हितैषी और जैन शासनके सकल कलापूर्ण चन्द्रमा थे †। होय्सलनरेश एरेयङ्ग उनके शिष्य थे, जिन्होंने कई ग्राम उन्हें भेंट किये थे।×

धारानरेश पूजित प्रभाचन्द्र—इसी शिलालेखमें मुनि प्रभाचन्द्र जी के विषयमें लिखा है कि वे एक सफल वादी थे और धारानरेश भोजने अपना शीश उनके पवित्र चरणोंमें रक्खा था ‡।

श्री दामनन्दि—श्री दामनन्दिमुनिको भी इस शिलालेखमें एक महावादी प्रकट किया गया है, जिन्होंने बौद्ध, नैयायिक और वैष्णवोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया था। महावादी 'विष्णुभट्ट'को परास्त करनेके कारण वे 'महावादि विष्णुभट्टघरट्ट' कहे गये हैं।●

---

† जैशिसं०, पृ० ११० 'जयत्यसौ निधान, भव्यैकहृद्यमर्जैनशासना-म्बर-परिपूर्णचन्द्र-सकलकला — [illegible]-विस्तार-[illegible] गुण-रत्न-विभूषण गोपनन्दिः।'

× जैशिसं०, पृ० ३६२ ‡ जैशिसं०, पृ० ११८

● 'बौद्धो नैयायिक-प्रकर-वैष्णविक-कवि-कुल [illegible]।
श्री दामनन्दिमुनिः बुध-महावादि-विष्णुभट्ट-घरट्ट ॥१४॥'
—जैशिसं०, पृ० ११८

मन्दी नामक मठमतिकाने उनसे दीक्षा लेकर समाधिमरण किया था।×

एकसौ आठवर्ष तपकरनेवाले दि० मुनि—

नं० १५२ शिलालेख प्रगट करता है कि कालन्तूरके एक मुनिराजने कटवप्र पर्वत पर एक सौ आठ वर्ष तक तप करके समाधिमरण किया था।+

मतलब यह है कि श्रवणबेलगोलके प्रायः सब ही शिलालेख दिगम्बर मुनियोंकी कीर्ति और यशको प्रगट करते हैं। राजा और रङ्क सब ही का उन्होंने उपकार किया था। रणक्षेत्रमें पहुँच कर उन्होंने वीरोंको सन्मार्ग सुझाया था। राजा रानी, स्त्री-पुरुष, सबही उनके भक्त थे।

दक्षिण भारत के अन्य शिला लेखों में दिग० मुनि—

श्रवण बेलगोलके अतिरिक्त दक्षिण भारतके अन्य स्थानोंमें भी अनेक शिला लेख मिले हैं, जिनसे दिगम्बर मुनियोंका गौरव प्रगट होता है। उनमें से कुछका संग्रह प्रो० शेषगिरिरावने प्रगट किया है, जिससे विदित होता है कि दिगम्बर मुनि इन शिलालेखोंमें यम-नियम-स्वाध्याय-ध्यान धारण-मौनानुष्ठान-जप-समाधि—शीलगुण—सम्पन्न लिखे गये हैं *। उनका यह विशेषण उनके चरित्र-सौन्दर्यको प्रगट करता है। प्रो० सा० उनके विषयमें लिखते हैं कि:—

× Ibid., p. 291

+ Ibid., p. 308

* SSIJ., pt. II p. 6

"From these epigraphs we learn some details about the great ascetics and acharyas who spread the gospel of Jainism in the Andhra-Karnata desa. They were not only the leaders of lay and ascetic disciples, but of royal dynasties of warrior clans that held the destinies of the peoples of these lands in their hands." †

भावार्थ—"इन शिलालेख-संग्रहसे उन महान् दिगंबर मुनियों और आचार्योंका परिचय मिलता है, जिन्होंने आंध्र-कर्णाट देशमें जैनधर्मका संदेश विस्तृत किया था। वे मात्र श्रावक और साधु शिष्योंके ही नेता नहीं थे, बल्कि उन क्षत्रिय कुलोंके राजवंशोंके नेता थे कि जिनके हाथोंमें उन देशोंकी प्रजा के भाग्यकी बागडोर थी।"

दिगम्बराचार्यों का महत्व पूर्ण कार्य— सचमुच दिगम्बर मुनियोंने बड़े २ राज्योंकी स्थापना और उनके संचालनमें महत्व भाग लिया था। पुडल (मद्रास) के पुरातत्वसे प्रगट है कि एक दिगम्बराचार्यने असभ्य कुरुम्बों को जैनधर्ममें दीक्षित करके उन्हें सभ्य बना दिया था। वे जैनधर्मके महान् रक्षक थे और उन्होंने धर्म संयमसे प्रेरित हो कर बड़ी २ लड़ाइयां लड़ी थीं‡। इतने ही क्या, बल्कि दिग-म्बराचार्योंके अनेक राजवंशी शिष्योंने धर्म संग्राममें अपना भुज-विक्रम प्रगट किया था। जैन शिलालेख उनकी रणगाथा-

† Ibid., p. 68 ‡ GIL, p. 236

मोंसे ओतप्रोत हैं। उदाहरणतः गङ्गसेनापति चामुण्डराय जो चामुण्डरायके हो नेमिजिन्, वह जैनधर्मके दृढ़ श्रद्धानी ही नहीं, बल्कि उसके तत्वके ज्ञाता थे। उन्होंने जैनधर्म पर कई श्रेष्ठ ग्रन्थ लिखे हैं और वह अहिंसाके धर्मशास्त्र को पालन करते थे; किन्तु उन पर भी उन्होंने एक नहीं अनेक समरक्षेत्रोंमें अपनी तलवारका जौहर ज़ाहिर किया था+। वास्तवमें जैनधर्म मनुष्यको पूर्ण स्वाधीनताका सन्देश सुनाता है। जैनाचार्य निर्भय और स्वाधीन होकर सभी धर्मोपदेश जनताको देते हैं जो असत्यका भयकारी हो। इसीलिये वह 'वादि-कुठारक' कहे गये हैं। भीरुता और कायरता तो जैनमुनियोंके निकट फटकभी नहीं सकता है।

सं० सा० के उक्त संग्रहमें विशेष उल्लेखनीय दिगम्बराचार्य श्री माघनन्दि सैद्धान्त चक्रवर्ती, जो वादियोंके लिये महाभयानक (Terror to disputant) थे, वह और बल्लाल के गुरु (Preceptor of Bara king) श्री वासवचन्द्र मुनि हैं×। अन्य लेखोंसे प्रगट है कि—

उपरान्त के शिलालेखोंमें दि० मुनि—

सन् १०५८ ई० में सिद्धेश्वरमें दिगम्बराचार्य श्री वीरसेन बहु प्रसिद्ध हुये थे। उन्होंने विरुद्धमत-प्रचारकोंके समक्ष वादमें विजय पाकर धर्मोद्योत किया था और लोगोंको [illegible]

+ वीर, वर्ष० पृ० २—११

× SSIJ., pt. VI pp. 61—69

जैनधर्ममें दीक्षित किया था* । कारकलमें राजा वीरपाण्ड्यने दिगम्बराचार्योंका आश्रय लिया था और उनके द्वारा सन् १४३२ में श्री गोम्मट-मूर्ति की प्रतिष्ठा कराई थी, जिसे उन्होंने स्थापित कराया था । एक ऐसीही दिगम्बर मूर्तिकी स्थापना वेणूरमें सन् १६०४ में श्री तिम्मराज द्वारा की गई थी । इस समयकी दिगम्बराचार्यों ने धर्मोद्योत किया था । सन् १५३० के एक शिलालेखसे प्रगट है कि श्रीरंगनगरका शासक विधर्मी होगया था, उसे जैनसाधु विद्यानन्दिने पुनः जैनधर्ममें दीक्षित किया था।‡

दि० मुनि श्री विद्यानंदि—इसी शिलालेख से यहभी प्रगट है कि "इन मुनिराजने नारायणपट्टणके राजा नंददेवकी सभामें नंदनमल्ल भट्टको जीता, सालुवेन्द्र राजा केशरीवर्माकी सभामें वादमें विजय पाकर 'वादी' पाया, सालुवदेव राजाकी सभामें महान विजय पाई, बिलिगे के राजा नरसिंहकी सभामें जैनधर्मका माहात्म्य प्रगट किया, कारकल नगरके शासक भैरव राजाकी सभामें जैनधर्मका प्रभाव विस्तारा, राजा कृष्णरायकी राजसभामें विजयी हुए, कोपण व अन्य तीर्थों पर महान उत्सव कराये, श्रवणबेलगोल के श्री गोम्मटस्वामीके चरणोंके निकट आपने अमृतकी वर्षा के समान योगाभ्यासका सिद्धांत मुनियोंको प्रगट किया, तिरुक्पामें प्रसिद्ध हुये, उनकी आज्ञानुसार भोजदेव राजा

---

* वीर, वर्ष ? पृष्ठ १६६ ‡ जैन०, पृ० ५० व DG.

ने कदम्बराज पूजा करवाई और वह संघी राजा और कदम्ब कृष्णदेवसे पूज्य थे।+" वह एक प्रतिभाशाली साधु थे और उनके अनेक शिष्य दिगम्बर मुनिराज थे।

सारांशतः दक्षिण-भारतके पुरातत्वसे वहां दिगम्बर मुनियोंका प्रभावशाली अस्तित्व एक प्राचीनकालसे बराबर सिद्ध होता है। इस प्रकार भारत भरका पुरातत्व दिगम्बर जैन मुनियोंके महती सत्कर्षका द्योतक है।

[२४]

विदेशोंमें दिगम्बर मुनियोंका विहार।

'India had pre-eminently been the cradle of culture and it was from this country that other nations had understood even the rudiments of culture. For example, they were told, [illegible] Buddhistic missionaries and Jaina monks went forth to Greece and Rome and [illegible] places as far as Norway and had spread their culture.' §

—Prof. M. S. Ramaswamy Iyengar.

जैन पुराणोंके कथनसे स्पष्ट है कि तीर्थंकरों और श्रमणोंका विहार समस्त आर्यखंडमें हुआ था। वर्द्धमानकी

+ मजैस्मा०, पृ० १२०—१२१

§ The "Hindu" of 25th July 1919 & JG. XV 27

जाती हुई दुनियांका समावेश आर्यखंडमें हो जाता है †। इसलिये यह मानना ठीक है कि अमरीका, यूरोप, एशिया आदि देशोंमें एक समय दिगम्बर धर्म प्रचलित था और वहां दिगम्बर-मुनियोंका विहार होता था। आधुनिक विद्वान् भी इस बातको प्रकट करते हैं कि बौद्ध और जैनभिक्षुगण यूनान, रोम और नार्वे तक धर्म प्रचार करते हुये पहुँचे थे!

किन्तु जैनपुराणोंके वर्णन पर विशेष ध्यान न देकर यदि ऐतिहासिक प्रमाणों पर ध्यान दिया जाय, तो भी यह प्रकट होता है कि दिगम्बर मुनि विदेशोंमें अपने धर्मका प्रचार करनेको पहुँचे थे। भ० महावीरके विहार विषयमें कहा गया है कि वे काक्षोल, तुरुष्क, बाल्हीक, यवनश्रुति, गांधार क्वाथतोय, तार्ण और कार्ण देशोंमें भी धर्मप्रचार करते हुये पहुँचे थे ÷। ये देश भारतवर्षके बाहरके प्रकट होते हैं। काक्षोल संभवतः आक्सीनिया (Oxiana) है। यवनश्रुति यूनान अथवा फारसका द्योतक है। बाल्हीक बल्ख (Balkh) है। गांधार कंधार है। क्वाथतोय रेडसी (Red Sea) के निकटके देश हो सकते हैं। सार्वकालीं तुराव आदि प्रतीत होते हैं। इस दशामें कंधार, यूनान, मिश्र आदि देशोंमें भग० वानका विहार हुआ मानना ठीक है +।

---

† जैना०, १८६-१९०

÷ हरिवंशपुराण, सर्ग ३ श्लो० ३-७

* वीर, वर्ष ६ पृ० ७

+ दिगं०, भा० २ पृ० १०२-१०१

वेत्ता दिगम्बर वेषमें रहेथे ‡। वैसेहीसे दिगम्बर मुनियोंके निकट शिक्षा ग्रहणकी थी। यूनानियोंने उन मुनियोंकी प्रशंसाकी है, जैसे कि लिखा जा चुकाहै।

अब यूनान और मिश्र जैसे दूरके देशोंमें दिगम्बर मुनि पहुँचेथे, तो भला मध्य-एशियाके अरब ईरान और अफगानिस्तान आदि देशोंमें वे क्यों न पहुंचते ? सचमुच दिगम्बर मुनियोंका विहार इन देशोंमें एक समयमें हुआथा। मौर्य सम्राट् सम्प्रतिने इन देशोंमें जैन श्रमणोंका विहार कराया था, यह पहले ही लिखा जा चुकाहै। मालूम होताहै कि दिगम्बर मुनि अपने इस प्रयासमें सफल हुयेथे, क्योंकि यह पता चलताहै कि इस्लाम मज़हबकी स्थापनाके समय अधिकांश जैनी अरब छोड़कर दक्षिण-भारतमें आ बसेथे +। तथा हुएन सांगके कथनसे स्पष्ट है कि ईस्वी सातवीं शताब्दि तक दिगम्बर मुनिगण अफगानिस्तानमें अपने धर्मका प्रचार करते रहेथे ×।

दिगम्बर मुनियोंके धर्मोपदेशका प्रभाव इस्लाम-मज़हब पर बहुत कुछ पड़ा प्रतीत होताहै। दिगम्बरत्वके सिद्धांतका इस्लाम-मज़हबमें मान्य होना, इस बातका सबूत है। अरबी

‡ NJ., Intro p. 2 & "Diogenes Laertius (IX. 61 & 63) refers to the Gymnosophists and asserts that Pyrrho of Elis, the founder of pure Scepticism came under their influence and on his return the Elis imitated their habits of life" —EB., XII 753

+ Ar., IX. 284 × हुएन॰, पृ॰ [illegible]

बल्लपरसी, दिगम्बर मुनियोंने जैनधर्मके प्राचीनकेन्द्र अङ्क पर सिंहलद्वीपको बिलकुलही नहीं छोड़ दियाथा । मध्यकालमें मुनि यशःकीर्ति इतने प्रभावशाली हुयेथे कि तत्कालीन सिंहल नरेशने उनके पाद-पद्मोंकी अर्चा कीथी ।

सारांशतः यह प्रकट है कि दिगम्बर मुनियोंका विहार विदेशोंमेंभी हुआथा । भारतेतर जनताकाभी उन्होंने कल्याण कियाथा ।

(२१)

मुसलमानी बादशाहतमें दिगम्बर मुनि ।

"O son, the kingdom of India is full of different religions... ...It is incumbent on thee to wipe all religious prejudices off the tablet of the heart; administer justice according to the ways of every religion."‡ —Babar.

मुसलमान और हिन्दुओंका पारस्परिक सम्बन्ध—ई० ७वीं—८वीं शताब्दिसे अरबके मुसलमानों ने भारतवर्षपर आक्रमण करना आरम्भ कर दियाथा, किन्तु कई शताब्दियों तक उनके पैर यहां पर नहीं जमेथे । वह लूटमार करके जो मिला उसे लेकर अपने देशको लौट जातेथे । [illegible]

---

† वीरैशि० पृ० ३११ ०) ‡ QJMS., Vol.XVIII p. 116

प्रारंभिक आक्रमणोंमें भारतकेसी पुरुषोंकी एक बड़ी संख्यामें हत्या हुई थी और उनके धर्ममन्दिर और मूर्तियांभी खूब तोड़ीगई थीं। तिमूरलंगने जिस रोज़ दिल्ली फतहकी उस रोज़ उस ने एक लाख भारतीय कैदियोंको तोप दम करवा दिया+। सचमुचप्रारम्भमें मुसलमान आक्रमणकारियोंने हिन्दुस्तानको बेतरह तबाह किया,किन्तु जब उनके यहांपर पैर जमगये और वे यहां रहने लगे तो उन्होंने हिन्दुस्तानका होकर रहना ठीक समझा। यहांकी प्रजाको संतोषित रखना उन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य माना। बाबरने अपने पुत्र हुमायूं को यही सिखाया कि "भारतमें अनेक मतमतान्तर हैं,इसलिये अपने हृदयको धार्मिक पक्षपातसे साफ रख और प्रत्येक धर्मकी रिवाजोंके मुताबिक इन्साफ कर" परिणाम इसका यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानोंमें परस्पर विश्वास और प्रेमका बीज पड़ गया। जैनोंके विषयमें प्रा० डॉ० हेल्मुथ वॉन ग्लासेनाप कहते हैं कि "मुसलमानों और जैनोंके मध्य हमेशा वैमनस्य सम्बन्ध नहीं था.... (बल्कि) मुसलमानों और जैनोंके बीच मित्रता का भी सम्बन्ध रहा है+।" इसी मैत्रीपूर्ण सम्बन्धका यह परि-णाम था कि दिगम्बर मुनि मुसलमान बादशाहोंके राज्यमें भी अपने धर्मका पालन कर सके थे।

+Elliot III. p. 436: "100000 infidels, impious idolators were on that day slain."

—Malfuzat-i-Timuri.

+ DJ., p. 66 & जैन०, पृ० ६८

ईस्वी दसवीं शताब्दिमें जब अरबका सौदागर सुलेमान यहां आया तो उसे दिगम्बर साधु बहुसंख्यामें मिले थे, यह पहले लिखा जा चुका है। ग़र्ज़ यह कि मुसलमानोंने आतेही यहां पर नंगे दरवेशोंको देखा। महमूद गज़नी (१००१) और महमूद गौरी (११७५) ने अनेक बार भारत पर आक्रमण किये, किन्तु वह यहां ठहरे नहीं। ठहरे तो यहां पर 'ग़ुलाम ख़ानदान' के सुल्तान और उन्हींसे भारत पर मुसलमानी बादशाहतकी शुरूआत हुई समझना चाहिये। उन्होंने सन् १२०६से १२९० ई० तक राज्य किया और उनके बाद खिलजी, तुग़लक़ और लोदी वंशोंके बादशाहोंने सन् १२९० से १५२६ ई० तक यहां पर शासन किया।*

मुहम्मद गौरी और दिगम्बर मुनि—

इन बादशाहोंके ज़मानेमें दिगम्बर मुनिगण विशेष धर्म-प्रचार करते रहे थे, यह बात जैन एवं अन्य स्रोतोंसे स्पष्ट है। ग़ुलाम बादशाहोंके पहलेसे ही दिगम्बर मुनि सुल्तान महमूदका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर चुके थे†। सुल्तान मुहम्मद-ग़ोरीके सम्बन्धमें तो यह कहा जाता है कि उसकी बेग़मने

---

* Oxford. pp 109—130

† "[illegible] यवन गय-शिरोमणि महम्मदसुरत्राण् [illegible] [illegible]।" —अर्थात्—"[illegible] के

स्वर्गीय १००८ मुनि चन्द्रसागरजी महाराज] [पृ० २६६]

[लेखक द्वारा का चित्र]

खिलजी, तुगलक और लोदी बादशाहों के राज्य और दिगम्बर मुनि—खिलजी, तुगलक और लोदी बादशाहोंके राज्यकालमें भी अनेक दिगंबर मुनि हुये थे। काष्ठासंघमें श्री कुमारसेन, प्रतापसेन, महातपस्वी माहवसेन आदि मुनिगण प्रसिद्ध थे। महातपस्वी श्री माहवसेन अथवा महासेनके विषयमें कहा जाता है कि उन्होंने खिलजी बादशाह अलाउद्दीनसे सम्मान पाया था ×। इतिहाससे प्रगट है कि अलाउद्दीन धर्मकी परवाह कुछ नहीं करता था। उसपर राघो और चेतन नामक ब्राह्मणोंने उसको और भी बरगला रक्खा था। एकदा उन्हीं दोनोंने बादशाहको दिगम्बर मुनियोंके विरुद्ध खड़ा हुआ और उनकी बात मान कर बादशाहने जैनियोंसे अपने गुरुको राजदरबारमें उपस्थित करनेके लिये कहा। जैनियोंने विकट कालमें आचार्य माहवसेनको दिल्लीमें उपस्थित पाया। उनका विहार दक्षिणकी ओर से वहां हुआ था।

सुल्तान अलाउद्दीन और दिगंबराचार्य—आचार्य माहवसेन दिल्लीके बाहर स्मशानमें ध्यानारूढ़ तिष्ठे

× "(The Jain) Acharyas····by their character attainments and scholarship ·· · commanded the respect of even Muhammadan Sovereigns like Allauddin and Aurangaz Padusha (Aurangazeb)."

—SSIJ., pt. II p. 132

शिलालेखमें है। यह उल्लेख बादशाह अलाउद्दीनके संबन्ध में हुआ प्रतिभाषित होता है।+

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि बादशाह अला-उद्दीनके निकट दिगम्बर मुनियोंको विशेष सम्मान प्राप्त हुआ था। दिल्लीके श्री पूर्णचन्द्र दिगम्बर जैन श्रावककी भी इज्जत अलाउद्दीन करता था‡ और उसने श्वेताम्बराचार्य श्री रामचन्द्रसूरिको कई भेंटें अर्पण की थीं+। सच बात तो यह है कि अलाउद्दीनके निकट धर्मका महत्व न [illegible] था। उसे अपने राज्यका ही एक मात्र ध्यान था—उसके सामने वह 'शरीअत' को भी कुछ न समझता था। एक दफा उसने नव-मुस्लिमोंको तोपदम करा दिया था×। हिन्दुओंके प्रति यह कृपाकर व्यवहार नहीं था और जैन लेखकोंने उसे 'खूनी' लिखा है। किन्तु अलाउद्दीनमें 'मनुष्यत्व' था। उसीके बल पर

+ मजैस्मा०, पृ० १११, 'सुलतान' शब्दसे लेखकोंने सुविधा खिलजी बादशाहोंको मुनिभक्त प्रकट किया है।

‡ वीहि०, भा० १४ पृ० १३२

+ जैन०, पृ० ५८

× "He (Allau-ddin) was by nature cruel and implacable, and his only care was the welfare of his kingdom. No consideration for religion (Islam) ·· ever troubled him. He disregarded the provisions of the Law. ..... He now gave commands that the race of "New-Muslims" should be destroyed."—Tarikh-i-Firozshahi."
—Elliot. III, p. 205

थाट्‌ ‡ । तुगलकशाहके गुरु श्री विद्यानन्दकीर्त्तिजी लगभग इसी समय हुये थे। उनके विषयमें एक शिलालेखसे पाया जाता है कि उन्होंने सिकन्दर बादशाहके समक्ष वाद किया था + । यह वाद लोदी सिकन्दरके दरबारमें हुआ प्रतीत होता है। अतः यह स्पष्ट है कि दिगम्बर मुनि तबभी इतने प्रभावशाली थे कि वे बादशाहोंके दरबारमें भी पहुँच जाते थे।

तत्कालीन विदेशी यात्रियों ने दिगम्बर साधुओंको देखा था— जैनसाहित्यके उपरोक्त उल्लेखों की पुष्टि अजैन श्रोतसे भी होती है। विदेशी यात्रियोंके कथन से यह स्पष्ट है कि गुलामोंसे लोदी राज्यकाल तक दिगम्बर जैनमुनि इस देशमें विहार और धर्मप्रचार करते रहे थे। देखिये तेरहवीं शताब्दिमें यूरोपीय यात्री मार्को पोलो (Morco Polo) जब भारतमें आया तो उसे ये दिगम्बर साधु मिले। उनके विषयमें वह लिखता है कि ×:—

---

‡ Oxford., p. 130 + मद्रास०, पृ० १११ व ११२

× "Some Yogis went stark naked, because, as they said, they had come naked into the world and desired nothing that was of this world. 'Moreover, they declared, "we have no sin of the flesh to be conscious of, and, therefore, we are not ashamed of our nakedness, any more than you are to show your hand or face. You, who are conscious of the sins of the flesh, do well to have shame and to cover your nakedness."

—Yule's Morco Polo, II, 366 & HARL., p. 364

यानी मिलेगा। अतः इसमें सन्देह नहीं कि भारतीं पोतोंको जो नंगे-साधु मिले थे, वह जैनसाधु ही थे।

अलबेरूनीके आधारपर रशीदुद्दीन नामक मुसलमान लेखकने लिखा है + "मलाबारके निवासी सबही श्रमण हैं और मूर्तियोंकी पूजा करते हैं। समुद्र किनारेके सिन्दबूर, फक्नूर, मञ्जरूर, हिलि, सदर्स, जङ्गलि और कुलम नामक नगरों और देशोंके निवासीभी 'श्रमण' हैं +।" यह लिखा ही जा चुका है कि दिगम्बर मुनि 'श्रमण' नामसे भी विख्यात हैं। अतः मानना होगा कि रशीदुद्दीनके अनुसार मलाबार आदि देशोंके निवासी दिगम्बर जैन ही थे, और तब उनमें दिगम्बर मुनियोंका होना स्वाभाविक है।

मुग़ल साम्राज्य में दिगम्बर मुनि—

उपरान्त सन् १५२६ से १७६१ ई० तक भारत पर मुग़ल और

+ Rashi-uddin from Al-Biruni writes : "The whole country (of Mahbar produces the pan...... The people are all *Samanis* and worship idols. Of the cities of the shore the first is Sindabur, the Faknur, then the country of Manjarur, then the country of Hili, then the country of Sadarsa, then Jangli, then Kulam. The men of all these countries are Samanis' —Elliot. Vol I p 68

इलियट सा० ने इन श्रमणोंको बौद्ध लिखा है, किन्तु उस समय दक्षिण भारतमें बौद्धोंका होना असम्भव है। श्रमण शब्द बौद्धभिक्षुके अतिरिक्त दिगम्बर साधुओंके लिये भी व्यवहृत होता है।

मलिक मुहम्मद जायसीके प्रसिद्ध हिन्दीकाव्य 'पद्मावत' (१।६०) के निम्नलिखित पदसे स्पष्ट है :—

"कोई ब्रह्मचारज पन्थ लागे।
कोई सुदिगंबर आछा लागे।"

अकबर और दिगम्बर मुनि—बादशाह अकबर जलालुद्दीन स्वयं जैनोंका परम भक्तथा और यदि हम उस समयके ईसाई लेखकोंके कथनको मान्यतादें तो कह सकतेहैं कि वह जैनधर्ममें दीक्षित होगयाथा। निस्सन्देह श्वेताम्बराचार्य श्रीहीरविजयसूरि आदिका प्रभाव उसपर विशेष पड़ाथा*। इस दशामें अकबर दिगम्बर साधुओंका विरोधी नहीं होसकता। बल्कि अबुलफ़ज़लने 'आईन-इ-अकबरी' भाग ३ पृष्ठ ८७ में उनका उल्लेख स्पष्ट शब्दोंमें किया है और लिखाहै कि वे नंगे रहते हैं।

वैराट का दि० संघ—वैराटनगरमें उस समय दिगंबर मुनियोंका संघ विद्यमानथा। वहां पर साक्षात् मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिके लिये यथाजात लिंगसिद्ध होता पारहाथा। वह नगर बड़ा समृद्धशालीथा और उसपर अकबर शासन करताथा। कवि राजमल्लने 'लाटीसंहिता' की रचना

---

* पादरी पिन्हेरो (Pinheiro) ने लिखाहै कि अकबर जैनधर्मानुयायी है [He (Akbar) follows the sect of the Jaines]

—सूरी०, पृ० १७१-१६८

मुनि धर्मचन्द्र मुनि विमलसेन, मुनि श्रीभूषणका भी इसी समय पता चलता है+। सारांशतः यदि जैन साहित्य और मूर्ति लेखोंका और भी परिशीलन और अध्ययन किया जाय तो अन्य अनेक मुनिगणका परिचय उस समयमें मिलेगा।

आगरेमें तब दिगम्बर मुनि—कविवर बनारसीदास जी बादशाह शाहजहांके कृपापात्रोंमें से थे। उन के सम्बन्धमें कहा जाता है कि एक बार जब कविवर आगरे में थे तब वहाँ पर दो नग्न मुनियोंका आगमन हुआ। सब ही लोग उनके दर्शन-वन्दनके लिये जाते आते थे। कविवर परीक्षा प्रधानी थे। उन्होंने उन मुनियोंकी परीक्षाकी थी×। इस उल्लेखसे उस समय आगरेमें दिगम्बर मुनियोंका निर्बाध विहार हुआ प्रकट है।

फ्रेंच-यात्री डा० बर्नियर और दिगंबर साधु—विदेशी विद्वानोंकी साक्षीसे उक्त वक्तव्यकी पोषक है। बादशाह शाहजहाँ और औरङ्गजेबके शासनकालमें फ्रांस से एक यात्री डा० बर्नियर (Dr. Bernier) नामक आया

+ श्री मूलसंघे [illegible] गणे [illegible]। [illegible] मुनि धर्मचन्द्र॥" —[illegible]

× × ×

श्री काष्ठासंघे [illegible] श्री मुनि विमलसेन।
[illegible] मुनिवर [illegible] श्रीभूषणो [illegible]॥"

—[illegible]

× [illegible], पृ० ६७—६०२

था। वह सारे भारतमें घूमा था और उसको समागम दिगम्बर मुनियोंसे भी हुआ था। उनके विषयमें वह लिखता है कि:*—

"मुझे अक्सर साधारणतः किसी राजाके राज्यमें, इन नङ्गे फकीरोंके समूह मिले थे, जो देखनेमें भयानक थे। उनको इसी दशामें मैंने उन्हें मादरजात नङ्गा बड़े बड़े शहरोंमें चलते फिरते देखा था। मर्द, औरत और लड़कियां उनकी ओर वैसे ही देखती थीं जैसे कि कोई साधु जब हमारे देशकी गलियोंसे हो कर निकलता है तब हम लोग देखते हैं। औरतें अक्सर उनके लिये बड़ी विनयसे भिक्षा लाती थीं। उनका विश्वास था कि वे पवित्र पुरुष हैं और साधारण मनुष्योंसे अधिक शीलवान और धर्मात्मा हैं।"

कुरनियर आदि अन्य विदेशियोंने भी इन दिगम्बर मुनियोंको इसी रूपमें देखा था। इस प्रकार के उदाहरणोंसे

---

*"I have often met, generally in the territory of some Raja, bands of these naked fakirs, hideous to behold.... In this trim I have seen them shamelessly walk stark naked, through a large town, men, women and girls looking at them without any more emotion than may be created when a hermit passes through our streets. Females would often bring them alms with much devotion, doubtless believing that they were holy personages, more chaste and discreet than other men." —Bernier, p.317

यह स्पष्ट है कि मुसलमान बादशाहोंने भारतकी इस प्राचीन प्रथा, कि साधु नंगे रहें और नंगे ही सर्वत्र विहारकरें, को सम्माननीय दृष्टिसे देखा था। यहां तक कि कतिपय दिगंबर जैनाचार्योंका उन्होंने खूब आदर सत्कार किया था। तत्कालीन हिन्दू कवि सुन्दरदासजी भी अपने 'सर्वांगयोग' नामक ग्रन्थमें मुनियोंका उल्लेख निम्नशब्दों में करते हैं+ :—

"केचित कर्म स्थापहि जैना, केश लुंचाइ करहिं अति फैना।"

केशलुंचन क्रिया दिगम्बर मुनियोंका एक खास मूलगुण है, यह लिखाही जा चुका है। इसके सिवा सं० १८३० में हुये कवि भागचंदजी के निम्न उल्लेखसे तत्कालीन दिगंबर मुनियोंका अपने मूलगुणोंको पालन करनेमें पूर्णतः दत्तचित्त रहना प्रगट है :—

"धारैं दिगम्बर रूप भूप सब पद को परसैं,
दिये परम वैराग्य मोक्षमारग को दरसैं।
जे भवि जैवें चरन तिन्हें सम्यक् दरसावैं;
करैं आप कल्याण सुधारसभावन भावैं॥
पंच महाव्रत धरैं धरैं शिवसुन्दर प्यारो;
निज अनुभौ रसलीन परम-पदके सुविचारी।
दशलक्षण निजधर्म गहैं रत्नत्रयधारी॥
ऐसे श्री मुनिराज चरन पर जग-बलिहारी॥"

+ जगत्, भूमिका

स्वर्गीय १००८ मुनि श्री अनन्तकीर्तिजी । [पृ० २९७]

ब्रिटिश-शासनकाल में दिगम्बर मुनि।

"All shall alike enjoy the equal and impartial protection of the Law, and We do strictly charge and enjoin all those who may be in authority under us that they abstain from all interference with the religious belief or worship of any of our subjects on pain of our highest displeasure."

—Queen Victoria [१]

महारानी विक्टोरियाने अपनी १ नवम्बर सन् १८५८ की घोषणामें यह बात स्पष्ट करदी है कि ब्रिटिश-शासनकी छत्र-छायामें प्रत्येक जाति और धर्मके अनुयायीको अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक मान्यताओंके पालन करनेमें पूर्णस्वाधीनता होगी और कोईभी सरकारी कर्मचारी किसीके धर्ममें हस्तक्षेप न करेगा। इस व्यवस्थामें ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत दिगम्बर मुनियोंको अपना धर्मपालन करना सुगम-साध्य होना चाहिये और वह प्रायः सुगम रहा है।

मत ब्रिटिश-शासनकालमें हमें कई एक दिगंबर-मुनियों के होनेका पता चलता है। सं० १८५० में ढाका शहरमें श्री

१ Royal Proclamation of 1st Nov. 1858

नरसिंह नामक मुनिके अस्तित्वका पता चलता है+। इटावाके आसपास इसी समय मुनि विनयसागर व उनके शिष्यगण धर्मप्रचार कर रहेथे। लगभग पचास वर्ष पहले लेखकके पूर्वजोंने एक दिगम्बर मुनि महाराजके दर्शन जयपुर रियासतके फागी नामक स्थान पर कियेथे। वह मुनिराज वहां पर दक्षिणकी ओरसे विहार करते हुये आयेथे।

दक्षिण भारतकी गिरि-गुफाओंमें अनेक दिगम्बर मुनि इस समयमें ध्यानध्यानरत रहेहैं। उन सबका ठीक २ पता पालेना कठिनहै। उनमेंसे कतिपयको प्रसिद्धिमें आपसे उन्हीं के नाम आदि प्रकटहैं। उनमें श्रीचन्द्रकीर्तिजी महाराजका नाम उल्लेखनीयहै। वह संभवतः गुरुमंडलाके निवासीथे और कैलपहाड़ोंमें तपस्या करतेथे। वह एक महान् तपस्वी कहे गये हैं। उनके विषयमें विशेष परिचय ज्ञात नहींहै*।

किन्तु उत्तरभारतके लोगोंमें साक्षात दिगम्बर मुनि श्रीचन्द्रसागरजीकाही नाम पहले-पहल मिलताहै। वह फलटण (सतारा) निवासी हुम्मड़जातीय एकश्री श्रावक आवकथे। सं० १९५५ में उन्होंने कुन्थलगिरि (सोलापुर) में दिगंबर

+ "संवत् अष्टादश शतक न ... नसत प ......'... ताके सहर सुहावना, तेज पंज के मांहि। जैनधर्मधारक जिहां श्रावक अधिक सुहाहिं।........जासु शिष्य जिनको विमुल सौभाग्य सुखधाम। मुनि नरसिंह जिनेसविधि पुस्तक यह लिखित॥"

—दि० जैन बड़ा मंदिर का एक पुस्तक

* दिजै०, वर्ष १ अङ्क १ पृ० २१

मुनि श्री जिनदासजीके समीप क्षुल्लकके व्रत धारण किये थे। सं० १९६६ में ब्रह्मगवास्नके महोत्सवके समय उन्होंने दिगंबर मुनिके महाव्रतोंको धारण करके आगुद्रामें सर्वत्र विहार करना प्रारंभ कर दिया। उनका विहार उत्तरभारतमें आगरातक हुआ प्रतीत होता है।†

सन् १९२१ में एक अन्य दिगंबर मुनि श्री आनन्दसागरजीका चातुर्मास उदयपुर (राजपूताना) में हुआथा। श्रीऋषभदेव केशरियाजीके दर्शन करनेके लिये वह गयेथे, किन्तु श्वेताम्बरियोंने उन्हें जाने नहीं दिया। फलतः, उपवासमें ध्यान लगाकर वह भगवान्‌के द्वार बैठ गयेथे। [illegible] सत्याग्रहके परिणाम-स्वरूप राज्यकी ओरसे उनको दर्शन करने देनेकी व्यवस्था हुईथी।‡

किन्तु इनके पहले दक्षिण भारतकी ओरसे श्रीअनन्तकीर्तिजी महाराजका विहार उत्तरभारतमें हुआथा। वह आगरा, ललितपुर आदि शहरोंमें होते हुए शिखिरजीकी वंदना को गयेथे। आखिर ग्वालियर राज्यान्तर्गत मोरेना स्थानमें उनका असामयिक स्वर्गवास माघ शुक्ला पंचमी सं० १९८४ को हुआथा। तब यह आपत्तिजनक हुआ किसी समयने उनके पास गयाकी भंगीकी झरदी थी। एक आगसे यह स्थान ही आग-मई होगया और उसमें उन आत्मरत मुनिजीका शरीर

---

† Ibid. p. 18—20

‡ दिजै०, वर्ष [illegible] अङ्क ४-६ पृ० ०

दृष्ट होगया। इन उपसर्गोंको उन धीर वीर मुनिजीने सम-भावोंसे सहन किया था। उनका जन्म सं० १९३० के लग भग तिरुमलौकार (कारकल) में हुआ था। वह मोरेनामें संस्कृत और सिद्धान्त का अभ्यास करनेकी नियतसे ठहरेथे; किन्तु असमयमें ही अचानक काल-कवलित होगये।

श्री अनन्तकीर्तिजीके अतिरिक्त उस समय दक्षिण-भारतमें श्री चन्द्रसागरजी मुनि मल्लिसागरजी, श्रीसनत्कुमारजी मुनि और श्रीसिद्धसागरजी मुनि ऐलकके होनेकाभी पता चलता है+। किन्तु पिछले पाँच-छै वर्षमें दिगंबर मुनिमार्गकी विशेष वृद्धि हुई है और इस समय निम्नलिखित संघ विद्यमान हैं, जिनके मुनिगणका परिचय इस प्रकार है :—

(१) श्री शान्तिसागरजी का संघ—यह संघ इस समय उत्तर भारतमें बहुत प्रसिद्ध है। इसका कारण यह है कि उत्तर भारतके कतिपय धनिकजन इस संघके साथ हो कर सारे भारतवर्षमें घूमे हैं। इस संघने गत चातुर्मास भारतकी राजधानी दिल्लीमें व्यतीत किया था। उस समय इस संघमें दिगम्बर-मुद्राको धारण किये हुये सात मुनिगण और कई क्षुल्लक-ब्रह्मचारी थे। दिगम्बर साधुओंमें श्रीशान्तिसागर ही मुख्य हैं। सं० १९२९ में उनका जन्म बेलगाम जिले के ऐनापुर-भोज नामक ग्राममें हुआ था। शान्तिसागरजी को सब लोग सात गौड़ा पाटील कहते थे। उनकी नौ वर्षकी

+ दिजै०, विशेषांक वीर नि० सं० २४५२

से सुशोभित किया गया और फिर बम्बईके प्रसिद्ध सेठ घासीराम पूनमचन्द्र जौहरीने एक यात्रा-सङ्घ सारे भारतके तीर्थोंकी वन्दनाकेलिये निकालनेका विचार किया। तदनुसार आचार्य शान्तिसागरको अपने संघसमेत सङ्घ तीर्थयात्राके लिये निकलना पड़ा। महाराष्ट्र के सांगली-मिरज आदि रियासतोंमें जब यह सङ्घ पहुँचा था तब वहाँके राजाओंने उसका अच्छा स्वागत किया था। निज़ाम सरकारने भी एक खास हुक्म निकाल कर इस सङ्घको अपने राज्यमें कुशलपूर्वक विहार कर जाने दिया था ‡। भोपाल राज्यमें होकर यह संघ मध्यप्रान्त होता हुआ श्री शिखिरजी फ़रवरी सन् १९२७ में पहुँचा था। वहाँ पर बड़ा भारी जैन सम्मेलन हुआ था। शिखिरजी से यह संघ कटनी, जबलपुर, लखनऊ, कानपुर, झाँसी, आगरा, धौलपुर, मथुरा, फ़ीरोज़ाबाद, एटा, हाथरस, अलीगढ़, हस्तिनापुर, मुज़फ़्फ़रनगर आदि शहरोंमें होता हुआ दिल्ली पहुँचा था। दिल्लीमें वर्षायोग पूरा करके अब यह संघ अलवरकी ओर विहार कर रहा है और उसमें ये साधुगण मौजूद हैं:—

(१) श्री शान्तिसागरजी आचार्य (२) मुनि चंद्रसागर (३) मुनि श्रुतसागर (४) मुनि वीरसागर (५) मुनि नमिसागर (६) मुनि ज्ञानसागर।

(२) दूसरा संघ श्री सूर्यसागर जी महाराजका है, जो अपनी सादगी और धार्मिकताके लिये प्रसिद्ध हैं। सूरतमें

‡ हुक्म नं० ६२८ (मौरिखे [illegible]) १३३७ फ़सली

देवेन्द्रसागरजी तथा विजयसागरजी थे। मुनीन्द्रसागर जी ललितपुर निवासी और परवार जातिके हैं। उनकी आयु अधिक नहीं है। [illegible] भी गिरिराज आदि तीर्थोंकी वन्दना कर चुके हैं।

(५) छठा संघ श्री मुनि पायसागरजी का है, जो दक्षिण-भारतकी ओर हो रहा है।

इनके अतिरिक्त मुनि ज्ञानसागरजी ([illegible]), मुनि ज्ञानानन्दसागरजी आदि दिगम्बर साधुगण एकान्तमें ज्ञान-ध्यानका अभ्यास करते हैं। दक्षिण-भारतमें उनकी संख्या अधिक है। ये सबही दिगम्बर मुनि अपने प्राकृत-वेषमें सारे देशमें विहार करके धर्मप्रचार करते हैं। ब्रिटिश भारत और रियासतोंमें वे बेरोकटोक घूमे हैं, किन्तु सबसे पहले काठियावाड़ के [illegible] मुनीन्द्रसागरजीके संघ पर [illegible] आदमियोंके वेषमें चलनेकी पाबन्दी लगा दी थी, जिसका विरोध अखिल भारतीय जैनसमाजने किया था और जिसको [illegible] करानेके लिये एक कमेटीभी बनी थी।

सच बात तो यह है कि ब्रिटिश राजकी नीतिके अनुसार किसीभी सरकारी कर्मचारीको किसीके धार्मिक मामले में हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं है और भारतीय कानूनकी रू से भी प्रत्येक सम्प्रदायके मनुष्योंको यह अधिकार है कि वह किसी अन्य संप्रदाय या राज्यके हस्तक्षेप बिना अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन निर्विघ्न-रूप से करे।

श्री १००८ आचार्य शान्तिसागर जी (पृष्ठ २६६)
[वर्तमान दिगम्बर मुनि]

दिगम्बर जैन मुनियोंका नग्नवेश कोई नई बात नहीं है। प्राचीनकालसे जैनधर्ममें उसकी मान्यता चली आई है और सम्राटके मुख्य धर्मों तथा शास्त्रोंमें उसका सम्मान किया है, यह बात पूर्व-पृष्ठोंके अवलोकनसे स्पष्ट है। इस अवस्थामें दुनियाकी कोई भी सरकार या व्यवस्था इस प्राचीन धार्मिक रिवाजको रोक नहीं सकती। जैन साधुओंका यह अधिकार है कि वह सारे शहरोंमें समान करें और श्रावकोंका यह हक है कि वे इस नियमको अपने साधुओं द्वारा निर्विघ्न पालने आनेके लिये व्यवस्था करें, जिसके बिना मोक्ष सुख मिलना दुर्लभ है।

इस विषयमें यदि कानूनी नजीरों पर विचार किया जाय तो प्रगट होगा कि प्रिवी कौन्सिल (Privy Council) ने सबकी समानताओंके मनुष्योंके लिये अपने धर्मसम्बन्धी जुलूसोंको आम सड़कोंपर निकालना जायज करार दिया है। जिसका उदाहरण इसप्रकार समझाई। प्रिवी कौंसिलने मंजूर हुसैन बनाम मुहम्मदशफीके मुकद्दमेमें तय किया है कि :—

"Persons of all sects are entitled to conduct religious processions through public streets, so that they do not interfere with the ordinary use of such streets by the public and subject to such directions the Magistrate may lawfully give to prevent obstructions of the thorough fare or breaches of the public peace, and the worshippers in

a mosque or temple, which abutted on a high-road could not compel processionists to intermit their worship while passing the mosque or temple on the ground that there was a continuous worship there." (Manzur Hasan Vs. Mohammad Zaman, 22 All. Law Journal, 179).

भावार्थ—'प्रत्येक सम्प्रदायके मनुष्य अपने धार्मिक जुलूसोंको आम रास्तोंसे लेजानेके अधिकारीहैं, बशर्ते कि वह से साधारण जनताको रास्तेके व्यवहार करनेमें दिक्कत न हो और मजिस्ट्रेटकी उन सूचनाओंकी पाबन्दीकी जांचें हो जो उसने रास्तेको रुकावट और अशान्ति न होनेके लिये उपस्थित की हों। और किसी मसजिद या मन्दिरमें, जो रास्तेपर स्थितहो, पूजा करने वाले लोग जुलूस निकालने वालोंको जब कि वह मन्दिर या मसजिदके पाससे निकलें, मात्र इस कारण कि उस समय वहां पूजा होरहीहै उनको जुलूसकी पूजाको बन्द करने पर मजबूर नहीं कर सकते।'

इस सम्बन्धमें "पारथसारथी आयंगार बनाम चिन्नकृष्ण आयंगार" की नजीरभी दृष्टव्यहै। (Indian Law Report, Madras, Vol. V p. 309) अब्दुल् चेट्टी बनाम महाराजीके मुक़द्दमेमें यही उसूल साफ़ शब्दोंमें इससे पहलेभी स्वीकार किया जा चुका है। (I.L.R. VI p. 203) इस मुक़द्दमेके फैसलेमें पृष्ठ२०६ पर कहा गयाहै कि जुलूसोंके सम्बन्धमें यह देखना चाहिये कि अगर यह धार्मिक्हैं और धार्मिक अंगोंका

थी इस से निकाला कि किसी त्यौहार या उत्सवके मौके पर जो गाने-बजाने आम-रास्तोंपर किये जावें उनको किसी हदतक सीमित करदे। मैं (जब हाई कोर्ट) मजिस्ट्रेट-ज़िलाकी रायसे सहमत नहीं हूं कि शब्द 'व्यवस्था' का भाव हर प्रकारके बाजे की मनाई है। व्यवस्था देनेका अधिकार उसी मामलेमें दिया जाताहै जिसका कोई अस्तित्वहो। किसी ऐसे कार्यके लिये जिसका अस्तित्व ही नहीं है, व्यवस्था देनेकी सूचना बिल्कुल व्यर्थ है। उदाहरणतः आनेजानेकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें सूचनासे आने जानेके अधिकारका अस्तित्व स्वतः अनुमान किया जायगा। उसका अर्थ यह नहीं है कि पुलिस-अफ़सरान किसी व्यक्तिको उसके घरमें बन्द रखने या उसका आना-जाना रोक देनेके अधिकारीहैं।

दफ़ा ३१ पुलिस ऐक्टकी रू से पुलिसको आम रास्तों, सड़कों, गलियों, घाटों आदि पर आने-जानेके सबही स्थानोंमें शान्ति स्थिर रखनेका अधिकारहै। बनारसमें इस अधिकारके अनुसार एक हुक्म जारी किया गयाथा कि खास सम्प्रदायके लोग यात्रावालों (पंडों) को, जो इस पवित्र नगरकी यात्राके लिये लोगोंका पथ प्रदर्शन करतेहैं, रेलवेस्टेशन पर जाने की मनाईहै। इस मुक़द्दमेमें हाईकोर्ट इलाहाबादके योग्य जज महोदयने तजवीज़ किया कि किसी स्थान पर शान्ति स्थिर रखनेके अधिकारोंके बल पर किसी खास सम्प्रदायके लोगों को किसी खास जगह पर जानेकी आम मुमानियत करनेका

सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिसको अधिकार न था। इस बातोंके कारण यहांसे डां० मसुकुन्दरुपा मजिस्ट्रेट बनाम किशनलालमें दिये गये हैं। (I.L.R Allahabad Vol 20 p 131) शान्ति भंग होनेका भय आदमियोंके घरोंमें बन्द करनेका नहीं है ?।

यही खिलाफियां दि० जैन साधुओंके भी सम्बन्ध रखती हैं। वह चाहे शहरमें फिरें और चाहें जंगलकी हालतमें, सरकारी अफसरोंका कर्तव्य है कि उनके इस हकको न रोकें। दिगम्बर जैन साधुगण सारे ब्रिटिश भारत और देशी रियासतोंमें स्वतन्त्रताके बराबर घूमते रहे हैं, कहीं कोई रोक टोक नहीं हुई और न इस सम्बन्धमें किसीको कोई शिकायत हुई। अतएव सरकारी अफसरोंका तो यह मुख्य कर्तव्य है कि वे दिगम्बर मुनियोंको अपना धर्म पालन करनेमें सहायता पहुंचावें। राजकालमें जिनमेंसी शासक नहीं हुवे उन्होंने बदी किया। इसलिये अब इसके विरुद्ध ब्रिटिश शासनके कोईभी बर्ताव करने के अधिकारी नहीं हैं। उनके तो जैनोंका अपना धर्म निर्बाध पालने जैसा ही अधिकार है।

[२७]

दिगम्बरत्व और आधुनिक विद्वान् ।

"मनुष्य मात्रकी आदर्श-स्थिति दिगम्बर ही है। मुझे स्वयं नग्नावस्था प्रिय है।" —म० गांधी

संसारके सर्व-श्रेष्ठ पुरुष दिगम्बरत्वको मनुष्यके लिये प्राकृत सुसंगत और आवश्यक समझते हैं। भारतमें दिगम्बरत्वका महत्व प्राचीनकालसे माना जाता रहा है। किन्तु अब आधुनिक-सभ्यताकी लीलास्थली यूरोपमें भी उसको महत्व दिया जा रहा है। प्राचीन यूनान-वासियोंकी तरह जर्मनी, फ्रान्स और इङ्गलेण्ड आदि देशोंके मनुष्य नंगे रहनेमें स्वास्थ्य और सदाचारकी वृद्धि हुई मानते हैं। वस्तुतः बात भी यही है। दिगम्बरत्व यदि स्वास्थ्य और सदाचारका पोषक नहो तो सर्वज्ञ जैसे धर्मप्रवर्तक मोक्ष-मार्गके साधनरूप उसका उपदेश ही क्यों देते! मोक्षको पानेके लिये अन्य आवश्यकताओं के साथ नंगा-तन और नंगा-मन होना भी एक मुख्य आवश्यकता है। श्रेष्ठ शरीर ही धर्म-साधनका मूल है और सदाचार धर्मकी जान है। तथा यह स्पष्ट है कि दिगंबरत्व श्रेष्ठ स्वस्थ शरीर और उत्कृष्ट सदाचारका उत्पादक है। अब भला कहिये यह परम-धर्मकी आराधनाके लिये क्यों न आवश्यक माना जाय? आधुनिक सभ्य-संसार आज इस सत्यको जान गया है और वह उसका मनसावाचाकर्मणा कायल है।

यूरोपमें आज सैकड़ों सभायें दिगम्बरत्वके प्रचारके लिये खुली हुई हैं; जिनके हजारों सदस्य दिगंबर-वेषमें रहनेका अभ्यास करते हैं। पेडस्टन स्कूल, पीटर्स फील्ड (हैम्पशायर) में बैरिस्टर-डाक्टर इंजिनीयर, शिक्षक आदि उच्च-शिक्षा प्राप्त महानुभाव दिगंबर वेषमें रहना अपनेलिये हितकर समझते हैं। इस स्कूलके मंत्री मोसफोर्ड (Mr H F. Barford) कहते हैं कि :—

Next year, as I say, we shall be even more advanced, and in time people will get quite used to the idea of wearing no clothes at all in the open and will realise its enormous value to health. (Amrita Bazar Patrika, 8-8-31)

आश्चर्य नहीं है कि एक शताब्दीके अन्दर नंगे रहनेकी प्रथा विशेष प्रचलित हो जायगी और स्वभावानुसार लोगोंको खुले-आम कपड़े पहननेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। उन्हें नंगे रहने से स्वास्थ्य के लिये जो अधिक लाभ होगा वह सब ज्ञात होगा।

इस प्रकार संसारमें भी नग्नता [illegible] रही है, उसकी यह स्पष्ट घोषणा है कि 'मनुष्य जातिको स्वास्थ्य रखनेके लिये कपड़ोंको तिलाञ्जलि देनी पड़ेगी। नग्नता रोगियोंके लियेही केवल एक महान् औषधि नहीं है, बल्कि स्वस्थ जीवोंके लिए भी अत्यन्त आवश्यक है। स्विट्जरलैंडके नगर लेयसन (Leysen) निवासी डॉ० रोलियर (Dr Rollier) ने केवल

नग्नचिकित्सा द्वाराही अनेक रोगियोंको आरोग्यता प्रदान कर जगतमें हलचल मचा दी है। उनकी चिकित्सा-प्रणालीका मुख्य अङ्ग है स्वच्छ [illegible] अथवा धूपमें नंगे रहना, नंगे टहलना और नंगे दौड़ना। जगतविख्यात् ग्रंथ 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में नग्नताका बड़ा भारी महत्व वर्णित है।' *
वास्तवमें डाक्टरोंका यह कहना कि जबसे मनुष्य जाति वस्त्रों के लपेटमें लिपटी है तबसेही सर्दी, जुकाम, कफ आदि दोषों का प्रादुर्भाव हुआ है, कुछ सत्य-सा प्रतीत होता है। प्राचीन काल में लोग नंगे रहने का महत्व जानते थे और दीर्घजीवी होते थे।

किन्तु दिगम्बरत्व स्वास्थ्यके साथ २ सदाचारका भी पोषक है। इस बातको भी आधुनिक विद्वानोंने अपने अनुभव से स्पष्ट कर दिया है। इस विषयमें श्री ओलिवर हर्स्ट सा० "The New Statesman and Nation" नामक पत्रिका में प्रगट करते हैं कि "अन्ततः अब समाज बाईबिलके पहिले अध्यायके महत्वको (जिसमें आदम और हव्वाके नंगे रहनेका ज़िकर है) समझने लगी है और नग्नताका भय अथवा झूठी लज्जा मन से [illegible] होती जा रही है। जगतमें घरमें बीसों ऐसी सोसाइटियां कायम होगई हैं जिनमें मनुष्य पूर्ण नग्नावस्थामें स्वच्छ वायुका उपयोग करते हुये नाना प्रकारके खेल खेलते हैं। ये लोग नग्न रहना प्राकृतिक, पवित्र और सरल

* दिमुनि० भूमिका, पृ० 'ख'

श्री १००८ मुनि ज्ञानसागर जी महाराज (पृ० २७१)

[वर्तमान दिगम्बर मुनि]

समझते हैं। नग्नपन्थियों से जिसके लिये उद्यम होरहा था, वह यही पवित्रताका आन्दोलन है। वह पवित्रता कैसी है ? इसको स्वयं उनके निवास-स्थान गेलैण्ड (Gelande) के देखनेसे जाना जा सकता है, जबकि वहां सैकड़ों स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकायें आनन्द-मय स्वाधीनताका उपभोग करते दृष्टि पड़ें। ऐसे दृश्यके देखनेसे मन पर क्या असर पड़ता है, यह बताया नहीं जा सकता! जिस प्रकार कोई मैला कुचैला आदमी स्नान करके स्वच्छ दिखाई दे, ठीक उसी तरह यह दृश्य सब प्रकारके कृत्रिम आडंबर-विधानोंसे शून्य दिखाई पड़ेगा। ऐसे पवित्र मानवोंके सामने जो दुराचारी होगा वह लज्जाको प्राप्त होजायगा। ऐसे आनन्दमय वातावरणमें..... ताजी हवा और सूरजकी प्रकाश शरीर पर पड़ता है उससे सर्वसाधारण अच्छी तरह जान सकते हैं, परन्तु जो मानसिक तथा आत्मीक लाभ होता है, वह विचार के बाहर है। यह आन्दोलन दिनों दिन बढ़ रहा है और कभी असफल नहीं हो सकती। मानवोंकी उन्नतिके लिये यह सर्वोत्कृष्ट भेंट जर्मनी संसारको देगा, जैसे उसने सापेक्षिक-सिद्धांत उसे प्रदान किया है। जर्मनमें जो अभी इन सोसाइटियोंकी सभा हुई थी उसमें भिन्न २ नगरोंके १००० सदस्य शरीक हुये थे। उसे प्रतिष्ठित व्यक्तियों और राष्ट्रीय कौन्सिलके मेम्बरोंने अपनी २ स्त्रियोंके साथ देखा था। उन स्त्रियोंके भाव उसे देखकर बिल्कुल बदल गये। नग्नताका विरोध करने

के लिये कोई [illegible] नहीं है, जिसपर वह टिक सके। जो इसका विरोध करता है, वह स्वयं अपने भावोंकी गन्दगी प्रगट करता है। किन्तु यदि वह इन लोगोंके निवास स्थानको गौर से देखे तो उसे अपना विरोध छोड़ देना होगा। वह देखेगा कि सैकड़ों स्त्री पुरुषों—माता, पिता और बच्चोंने कैसी पवित्रता प्राप्त करली है।"†

अतएव पाश्चात्य विद्वानोंकी अनुभव पूर्ण गवेषणासे दिगम्बरत्वका महत्व स्पष्ट है। दिगम्बरत्व मनुष्यको आदर्श स्थितिहै और वह धर्म मार्गमें उपादेयहै, यह पहलेही लिखा जाचुकाहै। स्वास्थ्य और सदाचारके पोषक दिगम्बरत्वका धार्मिक धर्मोंमें आदर होना स्वाभाविकहै। जैनधर्म एक धर्म विज्ञानहै और वह दिगम्बरत्वके सिद्धान्तका प्रचारक अनादि से रहाहै। उसके साधु इस प्राकृतवेषमें लोकधर्मके उत्कट पालक और प्रचारक तथा इन्द्रियजयी योगी रहेहैं; जिनके सम्मुख सम्राट चन्द्रगुप्तमौर्य और सिकन्दर महान् जैसे शासक नतमस्तक हुयेथे और जिन्होंने जनताको लोकका उपकार किया, ऐसेही दिगम्बर मुनियोंके संसर्गमें आये हुये अथवा मुनिधर्म से परिचित आधुनिक विद्वान्भी आज [illegible] तपोधन दिगम्बर मुनियोंके चारित्रसे अत्यन्त प्रभावित हुयेहैं। वे उन्हें राष्ट्रकी बहुमूल्य वस्तु समझतेहैं। देखिये साहित्याचार्य श्रीकन्नोमल जी एम० ए० अब उनके विषयमें लिखते हैं कि "मैं जैन नहीं

---

† जैमि०, [illegible] २१ पृष्ठ ७१२

the progress of Culture and humanity. The leading exponents of that faith continued to live such lives of hardy discipline and spiritual culture etc."

भावार्थ—"जैनधर्म संस्कृति और मानवसमाज की उन्नतिके लिये उत्कृष्ट और महान् चारित्रको निर्माण करानेमें सहायक रहाहै। इस धर्मके आचार्य सदाकी भांति तपश्चरण और आत्मविकासका उन्नत जीवन व्यतीत करते रहे।"

ईसाई मिशनरी ए० डुबोई सा० ने दिगम्बर मुनियोंके सम्बन्धमें बताया कि :—

"सबसे उच्चपद जोकि मनुष्य धारण कर सकता है वह दिगम्बर मुनिका पदहै। इस अवस्थामें मनुष्य साधारण मनुष्य न रहकर अपने ध्यानके बलसे परमात्माका भाग अंश होजाताहै।.........जब मनुष्य निर्वाणी (दिगम्बर) साधु होजाताहै तब उसको इस संसारसे [illegible] प्रयोजन नहीं रहता और वह पुण्य-पाप, नेकी-बदी को एक ही दृष्टिसे देखताहै—उसको संसार की इच्छायें तथा तृष्णायें नहीं उत्पन्न होतीहैं। न वह किसीसे राग और न द्वेष करताहै। वह बिना दुख मालूम किये हरेक प्रकारके उपसर्गोंको सहन कर सकताहै।......अपने आत्मिक भावोंमें जो मीठाहै उसको क्यों इस संसारकी और उसकी निस्सार क्रियाओंकी चिन्ता होगी!"*

---

* जैन०, पृ० १०४

एक अन्य महिला मिशनरी श्री स्टीवेन्सनने अपने ग्रंथ "हार्ट आव जैनीज्म" में लिखा है कि:—

"Being rid of clothes one is also rid of a lot of other worries, no water is needed in which to wash them. Our knowledge of good and evil, our knowledge of nakedness keeps us away from salvation. To obtain it we must forget nakedness. The Jain *Nirgranthas* have forgot all knowledge of good and evil. Why should they require clothes to hide their nakedness?" (Heart of Jainism, p. 35)

भावार्थ—'वस्त्रों की झंझटसे छूटना, दूसरी अन्य झंझटोंसे छूटना है। वस्त्र धोनेके लिये एक दिगम्बर जैनीको पानीकी ज़रूरत नहीं पड़ती। वस्तुतः पापपुण्यका ज्ञान—नग्नताका ज्ञानही मनुष्यको मुक्त नहीं होने देता। मुक्ति पानेके लिये मनुष्यको नग्नताका ध्यान भुलाना चाहिये। जैन निर्ग्रन्थोंने पापपुण्यके ज्ञानको भुला दिया है। भला वह अपनी नग्नता छिपानेके लिये वस्त्रोंकी क्यों ज़रूरत रक्खें?'

सन् १९२७ में जब कलकत्तेमें दिगम्बर मुनिसंघ पहुँचा तो श्री अलफ्रेड जेकबशॉ (Alfred Jacob Shaw) नामक एक ईसाई विद्वान् ने उसके दर्शन किये थे। वह लिखते हैं कि प्राचीन पुस्तकोंमें सम्मेदशिखिर पर दिगम्बर मुनियोंके ध्यान करने बाबत पढ़ा ज़रूर था लेकिन ऐसे साधुओंको देखनेका

अवसर अजिताश्रममें ही मिला। वहां चार दिगम्बर मुनि ध्यान और तपस्यामें लीन थे। आगसी जलती हुई धूप पर बिना किसी क्लेशके वह ध्यान कर रहे थे। उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि 'हम परमात्मस्वरूप आत्माके ध्यानमें लीन रहते हैं। हमें बाहरी दुनियाकी बातों और दुःख-सुखसे क्या मतलब'? यद्यपि मैं पक्का ईसाई हूं पर तो भी मैं कहूँगा कि इन साधुओंका सन्मान हर सम्प्रदायके मनुष्योंको करना चाहिये। उन्होंने संसारके सभी सम्बन्धोंका त्याग किया है और एक मात्र मोक्षकी साधनामें लीन हैं।"†

वस्तुतः इन विद्वानोंका उक्त कथन दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनियोंकी महिमाका स्वतः द्योतक है। यदि विचारशील पाठक तनिक इस विषय पर गम्भीर विचार करेंगे तो वह भी नग्नताके महत्व और नग्न साधुओंके स्वरूपको मोक्ष प्राप्तिके लिये आवश्यक जान जायेंगे। कविवर वृन्दावनके शब्द स्वतः उनके हृदयसे निकल पड़ेंगे :—

"बहुर नगन मुनि दरसत,
भगत उमग उर सरसत।
थुति थुति करि मन हरसत,
तरल नयन जल बरसत॥"

† JG. XXIII p. 139

कीजिये और फिर देखिये दिगम्बरत्वकी महिमा! जिसका मन शरीरमें अटका हुआ है, जो लज्जाके बन्धनमें पड़ा हुआ है और जो साधु-वेषको धारण करकेभी साधुताको नहीं पा पाया है, वह दिगम्बरत्वके महत्वको क्या जाने? मनकी शुद्धि—भावोंकी विशुद्धता—ही मुमुक्षुके लिये आत्मोन्नतिका कारण है और वस्तुतः वही साक्षात् मोक्षको दिलाने वाली है। किन्तु मनकी यह विशुद्धता क्या बनावट और सजावटमें नसीब हो सकती है? वस्त्रादि-परिग्रहके मोहमें अटका हुआ प्राणी भला कैसे निर्मोह-पदको पा सकता है?, इसीलिये संसारके तत्ववेत्ताओंने हमेशा दिगम्बरत्वका प्रतिपादन किया है। भगवान ऋषभदेवके निकटसे प्रकाशमें आकर यह महत् सिद्धान्त आज तक बराबर मुमुक्षुओंका आत्मकल्याण करता आ रहा है और जब तक मुमुक्षुओंका अस्तित्व रहेगा बराबर यह कल्याण करता रहेगा!

दिगम्बरत्व मनुष्यको रंकसे राव बना देता है। उसको पाकर मनुष्य देवता हो जाता है। लेकिन दिगम्बरत्व खाली नंगा-पन नहीं है। वह नंगे होनेसे कुछ अधिक है। नंगे तो पशुभी हैं, पर उन्हें कोई नहीं पूछता! इसका कारण है। [illegible] यह कि मानव-जगत जानता है कि पशुओंको अपने शरीर ढकने और विवेकसे काम लेनेकी तमीज़ नहीं है। पशुओंने विषय-विकार परभी विजय नहीं पाई है। इसके विपरीत दिगंबरमुनिके सम्बन्धमें उसकी धारणा है और ठीक धारणा

श्री १००८ मुनि चेतसागर जी

[वर्तमान दिगम्बर मुनि]

और गौरवको प्रकट करते हैं। दिगम्बर मुनियोंके मूलगुणों की संख्या-परिमाण प्रस्तुत परिच्छेदोंमें ओत-प्रोत दिगंबर-गौरवका बखान है। सचमुच दिगम्बर मुनि, श्रीशिवव्रतलाल वर्म्मनके शब्दोंमें * "धर्म-कर्मकी झलकती हुई प्रकाशमान् मूर्तियां हैं। वे विशाल हृदय और अथाह समुन्दर हैं जिसमें मानवी हितकामनाकी लहरें ज़ोर-शोरसे उठती रहती हैं। और सिर्फ मनुष्यही क्यों? उन्होंने संसारके प्राणी मात्रकी भलाईके लिये सबका त्याग किया। प्राणोहिंसाको रोकनेके लिये अपनी हस्तीको मिटा दिया। ये दुनियांके ज़बरदस्त रिफ़ार्मर, ज़बरदस्त उपकारी और बड़े ऊंचे दर्जेके वक्ता तथा प्रचारक हुये हैं। ये हमारे राष्ट्रीय इतिहासके क़ीमती रत्न हैं। इनमें त्याग, वैराग्य और धर्मका कमाल—सब कुछ मिलता है। ये 'जिन' हैं, जिन्होंने मोहमायाको और मन और कायाको जीत लिया। साधुओंकी नग्नता देखकर नाक भौं क्यों सिकोड़ते हो? उनके भावोंको क्यों नहीं देखते? सिद्धांत यह है कि आत्माको शारीरिक बन्धनसे और ताल्लुक़ात की जोखिमसे आज़ाद करके बिलकुल नंगा करलिया जाय, जिससे उसका निजरूप देखनेमें आवे।" यह वजह है इन साधुओंके ज़ाहिरदारीके ढकोसलोंसे परे रहने की! यह ऐबकी बात क्या है? ईश्वरकुटीमें रहने वालों को अपना जैसा आदमी समझा जाय, तो यह भूलकी है या नहीं? इसलिये आओ सब मिलकर राष्ट्र और लोकके कल्याणके लिये स्पष्ट घोषणा करो और कविवर वृन्दावनकी तानमें तान मिला कर कहो —

'सतपन्थ निर्ग्रन्थ दिगम्बर।'

---

* जैन०, पृ० १-२

परिशिष्ट ।

तुर्किस्तान के मुसलमानों में नम्मल्ल आदर की दृष्टिसे देखा जाता है, यह बात पहले लिखी जाचुकी है। मिस्र जुसी गार्नेट की पुस्तक "Mysticism & Magic in Turkey" के अध्ययन से प्रगट है कि "पैगम्बर म्हा० ने एक रोज़ हूरीयों के राज़ और मारफत की बातें अली म्हा० को बताईं और कह दिया कि वह किसी को बतायें नहीं । इस प्रकार से ४० दिन तक तो अली सा० उस गुप्त संदेश को छुपाये रहे; किन्तु फिर उसको दिल में छुपाये रखना असंभव जानकर वह जंगल को भाग गये (पृ० ११०)"। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि मुहम्मद सा० ने राजे-मारफत अर्थात् योग की बातें बताई थीं, जिनको बाद में सूफी दरवेशों ने उन्नत बनाया था । इन दरवेशों में 'अब्दालुल्लीय' और 'अब्दाल' श्रेणीके फ़कीर बिलकुल नंगे रहतेहैं। मि. के पी. गार्नेट साहबको एक दरवेश-मिलने आलिफअली की ज़ियारतगाह में [illegible] हुए एक 'अब्दालुल्लीय' दरवेश का हाल कहा था। उसका नाम अब्दालुल्लीय तूफोफ था। उसका शरीर मक्खियों कूदता था और वह बिलकुल नंगा (Perfectly naked) था । उसके बाल और दाढ़ी छोटे थे और शरीर कमजोर था । उसकी उम्र लगभग ४०-५० वर्ष की थी (पृ० ३६)। इन दरवेशों के संबन्धकी ऐसी प्रसिद्धि है कि देश में चाहे कहीं वेरोकटोक घूमते हैं—कभी अर्द्धनग्न और कभी पूरे नंगे वे होजाते हैं । जितने ही यह अद्भुत दीखते हैं उतने ही अधिक पवित्र और [illegible] वे गिने जाते हैं। (The result of this reputation for sanctity enjoyed by *Abdals* is that they are allowed to

wander at large over the country, sometimes half-clad, sometimes *completely naked*.) वे अपने शरीर का प्रयोग खूब करते हैं। घर और साथियों से उन्हें मोह नहीं होता। वे मैदानों और पहाड़ों में आ रमते हैं। वहीं वनफलों पर गुज़ारा करते हैं। जंगल के खूंखार जानवरों पर वे अपने आत्मतेज से अधिकार जमा लेते हैं। सारांशतः तुर्किस्तान में यह नंगे दरवेश अभिवन्द्य और पूज्य माने जाते हैं।

यूरोप में नंगे रहने का रिवाज दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। जर्मनी में इस की खूब वृद्धि है। अब लोग इस आन्दोलन को एक विशेष उन्नत जीवन के लिए आवश्यक समझने लगे हैं। देखिये, २ फ़रवरी के "स्टेट्समैन" अख़बार में यह ही बात कही गई है :—

"Germany is at present challenging the traditional view that clothes are requisite for health and virtue. The habit of wearing only the sun and air at exercise is growing and the "Nudist" movement at first laughed at and blushed at elsewhere, is now seriously studied as probably the way to a saner morality."—The Statesman, 2.2.32.

भारतवर्ष में नग्नता का महत्व बहुत पहले ही समझा जा चुका है। विदेशों में अब वही बात दुहराई जा रही है।

अनुक्रमणिका ।

"श्री चम्पावती जैन पुस्तकमाला" की

उपयोगी पुस्तकें

(१) जैनधर्म परिचय—सत्यार्थदर्पण और जैनदर्शन आदि के लेखक, जैनगज़ट के भूतपूर्व सम्पादक पं० अजित-कुमार जी शास्त्री इसके लेखक हैं। पृष्ठ संख्या क़रीब पचास के है। लेखक ने जैनधर्म के चारों अनुयोगों को इसमें संक्षेप में बतलाया है। जैनधर्म के साधारण ज्ञान के लिये यह बहुत उपयोगी है। मूल्य केवल ~)॥

(२) जैनमत नास्तिक मत नहीं है—यह मि० हर्बर्ट वारन के एक अंग्रेज़ी लेख का अनुवाद है। इसमें जैनधर्मको नास्तिक बतलाने वालों के प्रत्येक आक्षेप का उत्तर लेखक ने बड़ी योग्यता से दिया है। मूल्य केवल)॥

(३) क्या आर्यसमाजी वेदानुयायी हैं?—इसके लेखक पं० राजेन्द्रकुमार जी न्यायतीर्थ हैं। इसमें लेखक ने आर्यसमाजियों के अनादि पदार्थों के सिद्धांत, मुक्तिसिद्धांत, ईश्वर का निमित्तकारण और सृष्टिक्रम व ईश्वरस्वरूप को बड़ी स्पष्टरीति से वेद-विरुद्ध प्रमाणित किया है। पृष्ठ संख्या ७४। काग़ज़ बढ़िया। मूल्य केवल ~)

(४) वेद मीमांसा—यह पं० पुत्तूलालजी कृत प्रसिद्ध पुस्तक है। पुस्तकमाला ने इसको प्रचारार्थ पुनः प्रकाशित किया है। मूल्य कुछ आने से कम करके केवल =) रक्खा है।

(५) अहिंसा—इसके लेखक पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री धर्माध्यापक स्याद्वाद विद्यालय काशी हैं। लेखक ने बड़ी ही योग्यता से जैनधर्म के अहिंसा सिद्धांत को समझाते हुए उन आक्षेपों का उत्तर दिया है जोकि विधर्मियोंकी तरफ़ से जैनियों पर होते हैं। पृ० संख्या ५२। मूल्य केवल ~)॥

(६) ऋषभदेवजीकी उत्पत्ति असंभव नहीं है।—

इसके लेखक बा० कामताप्रसाद जैन अलीगंज (एटा) हैं। यह आर्यसमाजियों के "श्रीऋषभदेवजी की उत्पत्ति असम्भव" ट्रैक्ट का उत्तर है। पृष्ठ संख्या ८४; मूल्य ।)

(७) वेदसमालोचना—इसके लेखक पं० राजेन्द्रकुमारजी न्यायतीर्थ हैं। लेखकने इस पुस्तकमें, अनेक युक्तियों से ईश्वर वेदोंको नहीं बना सकता; वेदोंमें असम्भव बातोंका परस्पर विरुद्ध बातों का, अश्लील, हिंसा विधान, माँसभक्षण समर्थन, असम्बद्ध कथन, इतिहास, व्यर्थ प्रार्थनायें और ईश्वर का अन्य पुरुष से ग्रहण आदि कथन हैं; आदि विषयों पर जोरदार विवेचन किया है। पृष्ठ संख्या १२४। मूल्य केवल ।=)

(८) आर्यसमाजियों की गप्पाष्टक—लेखक श्री पं० अजितकुमार जी, मुलतान। विषय नामसे प्रकट है। मूल्य)॥

(९) सत्यार्थ दर्पण—लेखक पं० अजितकुमार जी मुलताननगर। हमारे यहांसे यह पुस्तक दूसरी बार आवश्यक परिवर्तन करके २५० पृष्ठों में छापी गई है। इसमें सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लासका भली प्रकार खंडन किया गया है। प्रचार करने योग्य है। लागतमात्र मूल्य ॥)

(१०) आर्यसमाजके १०० प्रश्नों का उत्तर—लेखक उपरोक्त। विषय नामसे प्रकट है। पृष्ठ संख्या १००। मूल्य=)

(११) क्या वेद भगवद्वाणी है?—लेखक—श्रीयुत सोऽहं शर्मा। विषय नाम से प्रकट है। मूल्य ~)

(१२) आर्यसमाज की डबल गप्पाष्टक—लेखक श्री पं० अजितकुमार जी, मुलतान नगर (पंजाब)। मूल्य ~)

(१३) दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि—लेखक श्री बा० कामताप्रसाद जी, अलीगंज (एटा)। मूल्य १)

नोट—इनके अतिरिक्त अन्य पुस्तकें भी प्रेस में छप रही हैं। समाज के श्रीमानों को चाहिये कि इनका प्रचार देश और विदेश में करें।

—प्रकाशक